मानव संस्कार ग्रन्थमाला–नवां पुष्प

आइये!

आध्यात्मिक ज्ञान

के विस्तार द्वारा

मनुष्य जाति की सहायता करें।

आध्यात्मिक ज्ञान

(सरल परिचय)

प्रार्थना, उपासना व ध्यान हेतु उपयोगी

संकलनकर्ता

मदन लाल अनेजा

प्रकाशक :

मानव संस्कार फाउन्डेशन

दिल्ली–110051

Website - www.manavsanskar.com

e-mail - manavsanskar.mla@gmail.com

A word about

MANAV SANSKAR FOUNDATION

4A, 3rd floor, Street No. 12, New Gobind Pura, Delhi-110051

Dear Readers,

"Manav Sanskar Foundation" is a public charitable trust. It was set up on 4th December 2012 and registered with the Government of National Capital Territory of Delhi on 10th December 2012, wholly for charitable purposes. Its main objects are as under :-

(i) to work for educational and spiritual upliftment of the common man ;

(ii) to publish books and other material on educational, social and spiritual subjects including Vedas & Upanishads ;

(iii) to publish, run, support and grant financial assistance to the Gurukuls and children of under priviledged persons of society;

(iv) To establish and maintain old age homes;

(v) To open and establish charitable dispensaries and;

(vi) To open free legal aid and advice centres for the poor and the helpless people, particularly women. The Trust, in addition to the present book has published, so far several pamphlets, leaflets and books and distributed them free of cost for spiritual upliftment of the general public irrespective of caste, sex, creed or religion besides providing free legal advice to the needy.

(vii) The Trust is also distributing its books free of cost throughout India on payment of postel and packing charges only. However, no postal charge is taken from Arya Samaj Mandirs/Gurukuls/ Educational Institutions.

The trust shall appreciate your participation in the donations out of your hard-earned and sacred earnings for the social and noble cause. The Trust accepts only cheque/draft in the Foundation Account as under :-

Current Acccount No. : 0646002104049820

Punjab National Bank (RTGS/NEFT IFS Code :- PUNB0064600)

F-2/3, Krishna Nagar, Delhi-110051

Paytm No. 9873029000

Our website : www.manavsanskar.com

Our e-mail : manavsanskar.mla@gmail.com

(M.L. Aneja)
President
Manav Sanskar Foundation

The Author is a Joint Registrar (Retired), Supreme Court of India and Former Advisor (Law), National Human Rights Commission, New Delhi

मानव संस्कार ग्रन्थमाला–नवां पुष्प

आइये!

आध्यात्मिक ज्ञान

के विस्तार द्वारा

मनुष्य जाति की सहायता करें।

आध्यात्मिक ज्ञान

(सरल परिचय)

प्रार्थना, उपासना व ध्यान हेतु उपयोगी

संकलनकर्ता

मदन लाल अनेजा

प्रकाशक :

मानव संस्कार फाउन्डेशन

दिल्ली–110051,

Website - **www.manavsanskar.com**

e-mail - **manavsanskar.mla@gmail.com**

प्रकाशक :
मदन लाल अनेजा
मानव संस्कार फाउन्डेशन
4 ए (तीसरी मंजिल) नया गोविन्द पुरा,
राम मन्दिर गली, दिल्ली-110051,
मो0- 09873029000,
Website -
www.manavsanskar.com
e-mail -
manavsanskar.mla@gmail.com

© सर्वाधिकार- मदन लाल अनेजा

पुस्तक मिलने का पता :-

1. विक्रान्त अनेजा
सी-79, तक्षशिला अपार्टमेन्ट,
प्लाट नं0-57, आई0पी0
एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

2. मदन लाल अनेजा
कुटिया नं0 -179, मुख्य शाखा,
आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर,
हरिद्वार

3. विशाल अनेजा
3 ए (तीसरी मंजिल) नया गोविन्द पुरा,
राम मन्दिर गली, दिल्ली-110051,
मो0- 09873029000,

All rights reserved. No part of this publication be reproduced, stored in a retrievel system, translated or transmitted in any form or by any means,electronic, mechanical, photocopying, recordng or otherwiese without the prior permission of the writer.

प्रथम संस्करण : मार्च, 2022

(वेद प्रचार-प्रसार हेतु निःशुल्क वितरण)

All books of Manav Sanskar Foundation
can be down-loaded free of cost

at :

www.manavsanskar.com

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	भूमिका	I - II
1.	ईश्वर सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान	1–5
2.	जीवात्मा सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान	6–12
3.	प्रकृति/सृष्टि सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान	13–17
4.	वेद सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान	18–24
5.	धर्म सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान	25–32
6.	अध्यात्म हेतु और जानकारी	33–41
7.	योग सम्बन्धित शुद्ध (सामान्य) ज्ञान	41–50
8.	योग सम्बन्धित गूढ़ ज्ञान	51–99

भूमिका

आध्यात्मिक अज्ञानता और योग के व्यवसायीकरण के कारण समाज में प्रार्थना, उपासना और ध्यान को लेकर विभिन्न भ्रान्तियाँ अभी भी फैली हुई हैं। अधिकतर मनुष्य संस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव और भोगवाद में लिप्त होने के कारण वेद, उपनिषद, दर्शन आदि आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय नहीं कर पा रहे हैं। इस कारण वे ईश्वर, जीव, प्रकृति, सृष्टि, धर्म, योग, ध्यान, उपासना आदि विषयों के शुद्ध ज्ञान से वंचित हैं। फलस्वरूप वे आध्यात्मिक शोषण व अन्धविश्वास के शिकार आज भी हो रहे हैं। वेद और योगदर्शन के अनुसार प्रार्थना, उपासना, सन्ध्या व ध्यान नहीं कर पा रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक "आध्यात्मिक ज्ञान-सरल परिचय" में वेद, उपनिषद, दर्शन आदि ग्रन्थों के आधार पर उपरोक्त विषयों की जानकारी सरल हिन्दी भाषा में, प्रश्न-उत्तर के रूप में, दी गई है, जिससे साधकों की अधिकतर भ्रान्तियाँ समाप्त हो सकें और वे इसी जन्म में अध्यात्म में उन्नति कर सकें। ईश्वर साक्षात्कार कर सकें। ईश्वरीय आनन्द को प्राप्त कर सकें। निःसन्देह इन विषयों की विस्तृत जानकारी के लिए आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करना अधिक उत्तम होगा।

यदि आप और आपके बच्चे उपरोक्त शुद्ध ज्ञान से अवगत हो जाते हैं तो, आध्यात्मिक क्षेत्र में, आपके परिवार के लिए यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी, समाज में फैली भ्रान्तियों व अन्ध विश्वास समाप्त होंगे और वैदिक संस्कृति की रक्षा होगी।

इस पुस्तक में दी गई ईश्वर, जीव, प्रकृति, सृष्टि, वेद,

धर्म आदि से सम्बन्धित जानकारी का संकलन आर्य जगत् के प्रसिद्ध वैदिक विद्वानों की निम्न पुस्तकों से किया गया है। मैं इन सभी वैदिक विद्वानों का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने जन कल्याण के लिए इन पुस्तकों को प्रकाशित किया है।

1. **ईश्वर, जीव, प्रकृति** – ले. आचार्य ज्ञानेश्वर आर्य, दर्शनाचार्य
2. **प्राचीन वैदिक सैद्धान्तिक ज्ञान** – ले. आचार्य ज्ञानेश्वर आर्य, दर्शनाचार्य
3. **वैदिक धर्म प्रश्नोत्तरी** – ले. पं. धर्मदेव सिद्धान्तालंकार विद्या वाचस्पति
4. **वैदिक धर्म प्रश्नोत्तरी** – ले. आदित्य प्रकाश गुप्त
5. **वैदिक प्रश्नोत्तरी** – ले. डॉ. मुमुक्षु आर्य
6. **योगदर्शनम्** – व्याख्याकार व ले. स्वामी सत्यप्रति परिव्राजक
7. **योगालोक** – ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

पुस्तक में ''योग सम्बन्धित गूढ़ ज्ञान'' विषय के अंतर्गत दी गई सूक्ष्म जानकारी (प्रश्न सं. 296 से 360 तक), आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक की पुस्तक ''योगदर्शनम्'' और स्वामी विद्यानन्द विदेह की पुस्तक ''योगालोक'' से ली गई है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक में दी गई संक्षिप्त जानकारी साधकों को उपरोक्त सातों पुस्तकों का स्वाध्याय करने के लिए प्रेरित करेगी और उनको प्रार्थना, उपासना, जप व ध्यान में पूर्ण सफलता प्राप्त करने में भी सहायक होगी।

– मदन अनेजा

ईश्वर सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान

1. ईश्वर किसे कहते हैं?

उ. ईश्वर एक पदार्थ है, वस्तु है। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार वस्तु उसको कहा जाता है जिसमें गुण व कर्म रहते हों। ईश्वर में अनेक गुण हैं। वह कर्म भी करता है।

2. ईश्वर का रूप कैसा है ?

उ. ईश्वर निराकार है, चेतन है, कोई ऐसी चीज या जगह नहीं जिसके अन्दर वह ना हो। उसका कोई रूप या शरीर नहीं है। इसलिए हम उसे आँखों से कभी नहीं देख सकते।

3. ईश्वर के कार्य कौन-2 से हैं?

उ. ईश्वर के मुख्य रूप से पाँच कार्य हैं :-

(i) ईश्वर संसार (सृष्टि) की रचना करता है।

(ii) ईश्वर संसार का पालन करता है।

(iii) ईश्वर सृष्टि का संहार (प्रलय) करता है

(iv) ईश्वर सृष्टि के आदि में वेदों का ज्ञान देता है।

(v) ईश्वर अच्छे बुरे कर्मों का फल देता है।

4. सूर्य चन्द्र पर्वत समुद्र आदि संसार की वस्तुओं को किसने बनाया है?

उ. ईश्वर ने।

5. ईश्वर कितने हैं?

उ. ईश्वर एक ही है। वह सब जगह व्यापक है, सब कुछ जानने वाला है। सर्व शक्तिमान है।

6. ईश्वर के अनेक नाम क्यों हैं?

उ. ईश्वर के अनेक गुण, कर्म, स्वभाव हैं। इस कारण उसके अनेक नाम हैं।

7. ईश्वर का मुख्य नाम क्या है?

उ. ''ओ३म'' ईश्वर का मुख्य नाम है।

8. ओ३म का मुख्य अर्थ क्या है?

उ. सर्वरक्षक

9. ईश्वर के कुछ गौण नाम वताएँ?

उ. आर्य समाज के नियम 2 के आधार पर :-

सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान , सृष्टिकर्ता, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक , सर्वान्तर्यामी, अजन्मा, अनादि, अनन्त, अनुपम, अमर, अजर, अभय, न्यायकारी, निराकार, निर्विकार, नित्य, दयालु और पवित्र

(ख) प्राणायाम मंत्र के आधार पर :-

भूः, भुव :, स्वः, महः,, जनः, तपः, सत्य।

10. ईश्वर के कुछ अन्य गौण नाम बताएँ?

उ. ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, शिव, इंद्र, वरुण, सोम, मंगल, बुध, शुक्र, शनि, राहु, केतु, अग्नि आदि

11. संसार को किसने धारण किया हुआ है?

उ. ईश्वर ने अपने सामर्थ्य से संसार को (लोक-लोकान्तरों को) धारण कर रखा है।

12. ईश्वर से हमारा क्या सम्बन्ध है?

उ. ईश्वर हमारा पिता है - हम उसके पुत्र हैं।

ईश्वर हमारी माता है - हम उसके पुत्र हैं।

ईश्वर हमारा गुरु है - हम उसके शिष्य हैं।

ईश्वर हमारा राजा है – हम उसकी प्रजा हैं।
ईश्वर हमारा उपास्य है – हम उसके उपासक हैं।
ईश्वर हमारा स्वामी है – हम उसके सेवक हैं।

13. ईश्वर निराकार है। उसके साक्षात्कार का क्या अर्थ है?

उ. किसी वस्तु के गुणों का अनुभव होना साक्षात्कार है। प्रत्यक्ष केवल आँखों से ही नहीं होता। दूसरी इन्द्रियों से भी होता है। जब आत्मा ईश्वर के ज्ञान, बल, गुण, आनन्द आदि गुणों का अनुभव करती है तो इसी को ईश्वर साक्षात्कार कहते हैं।

14. ईश्वर को सर्वशक्तिमान क्यों कहते हैं?

उ. ईश्वर अपने सामर्थ से अपने सभी कार्य पूर्ण करता है। किसी की सहायता नहीं लेता है। इसलिये ईश्वर को सर्वशक्तिमान कहते हैं।

15. ईश्वर का ज्ञान सदा एक सा रहता है या घटता बढ़ता रहता है?

उ. ईश्वर का ज्ञान सदा एक सा रहता है। यह असत्य नहीं होता है। यह घटता–बढ़ता नहीं है।

16. ईश्वर का साक्षात्कार (दर्शन) कौन करता है?

उ. वेद आदि शास्त्रों के विद्वान, धर्मात्मा व योगी ही ईश्वर का साक्षात्कार कर पाते हैं। उनके लिये भी अष्टांग योग का पालन अनिवार्य है।

17. ईश्वर और आत्मा में क्या भेद है?

उ. ईश्वर सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है। आत्मा अल्पज्ञ है, एकदेशी है। ईश्वर के पास अपना आनन्द है। आत्मा के पास अपना आनन्द नहीं है। आत्मा, आनन्द के लिए ईश्वर के पास जाता है।

18. ईश्वर को साकार मानने में क्या हानि है?

उ. साकार पदार्थ को बनाने वाला कोई दूसरा होता है। साकार पदार्थ नष्ट होने वाला और एकदेशी होता है। इसलिये ईश्वर नाशवान और एकदेशी हो जाएगा जबकि निराकार होने से ईश्वर सर्वव्यापक है, अविनाशी है।

19. वेदों में ईश्वर का क्या स्वरूप है?

उ. वेदों में ईश्वर को सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, निराकार, न्यायकारी, कर्मफल दाता आदि गुणों वाला बताया है।

20. ईश्वर को मूर्ति रूप में बनाकर पूजना कब से शुरू हुआ?

उ. लगभग 2500 वर्ष पूर्व से आरम्भ हुआ। इसके पहले लोग निराकार ईश्वर की ही उपासना करते थे।

21. क्या ईश्वर के गौण नाम की मूर्ति बनाना सही है?

उ. नहीं

22. क्या वैदिक धर्म में/वेदों में ईश्वर का अवतार लेना बताया गया है?

उ. नहीं।

23. क्या संसार में कभी ईश्वर का अभाव होता है?

उ. नहीं

24. क्या पुरुषोत्तम राम और योगीराज कृष्ण के समय ईश्वर नहीं था?

उ. उनके समय भी ईश्वर था और वे निराकार ईश्वर की ही उपासना करते थे।

25. ईश्वर आध्यात्मिक शुद्ध ज्ञान कब देता है?

उ. ईश्वर आध्यात्मिक शुद्ध ज्ञान मनुष्य को उसके मन की समाधि अवस्था में देता है।

26. प्रकृति और जीवों पर नियन्त्रण कौन रखता है?

उ. सर्वशक्तिमान ईश्वर

27. क्या ईश्वर के नियम अटल हैं?

उ. हाँ। उदाहरण :

– जैसे सूर्य पहले निकलता था वैसे ही अब निकलता है,
– ब्रह्माण्ड में अनेक ग्रह–उपग्रह भ्रमण कर रहे हैं। लेकिन वे आपस में कभी नहीं टकराते हैं।

28. ईश्वर प्राप्ति (साक्षात्कार) के क्या उपाय हैं?

उ. वैदिक ग्रंथों का स्वाध्याय, उनके अनुसार आचरण करना, वैदिक सत्संग, ध्यान और ईश्वर भक्ति – ईश्वर अनुभूति के साधन हैं।

29. ईश्वर का ध्यान करने से क्या लाभ होता है?

उ. लाभ :–

– मन पर अधिकार होता है
– इन्द्रियों पर नियन्त्रण होता है
– एकाग्रता और स्मरण शक्ति बढ़ती है।
– सात्विक बुद्धि व अच्छे संस्कार प्राप्त होते हैं।
– ईश्वरीय आनन्द की अनुभूति होती है।

30. निराकार ईश्वर उपासना की विधि बताएँ?

उ. यम–नियम का पालन, ओ३म व गायत्री मंत्र जप (अर्थ/भावार्थ सहित), ध्यान और वैदिक सन्ध्या द्वारा निराकार ईश्वर की भक्ति/उपासना की जाती है। यह बहुत सरल भी है।

नोट : निराकार ईश्वर की उपासना हेतु पढ़ें:

वैदिक विचार संग्रह, भाग 1, 2, 3

जीवात्मा सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान

31. जीवात्मा के बारे में बताएँ?

उ. जीवात्मा भी एक वस्तु है। यह मनुष्य, पशु, पक्षी का शरीर धारण करती है।

32. जीवात्मा को किस-किस नाम से पुकारा जाता है?

उ. जीवात्मा को जीव, रूह, आत्मा, इन्द्र और पुरुष भी कहते हैं।

33. क्या जीवात्मा और शरीर एक हैं?

उ. नहीं। दोनों अलग अलग हैं।

34. क्या मनुष्य और पशु आदि के शरीर में भिन्न भिन्न जाति के जीव हैं?

उ. नहीं। जीव एक से हैं।

पाप और पुण्य कर्मों के फल से जीवात्मा को भिन्न-भिन्न शरीर प्राप्त होते हैं।

35. जीवात्मा को (शरीर की मृत्यु के बाद) दूसरा शरीर प्राप्त करने में कितना समय लगता है?

उ. क्षण भर।

36. शरीर के अंदर कर्ता और भोगता कौन है?

उ. जीवात्मा

37. जीवात्मा मृत्यु के समय शरीर कैसे छोड़ता है?

उ. शरीर के किसी भी स्थान से

38. क्या मनुष्य, कुत्ते, बिल्ली आदि की अलग अलग आत्माएँ हैं?

उ. नहीं

39. क्या जीवात्मा भूत-प्रेत बनती है?

उ. नहीं

40. जीवात्मा भौतिक है या अभौतिक?

उ. अभौतिक

41. क्या स्त्रियों में भी जीवात्मा होती है?

उ. हाँ, होती है

42. क्या जीवात्मा स्थान घेरती है?

उ. नहीं

43. क्या जीवात्मा में ईश्वर भी रहता है?

उ. हाँ। सूक्ष्म होने के कारण ईश्वर जीवात्मा में ओत-प्रोत रहता है।

44. क्या सब जीवात्माएँ अलग अलग हैं?

उ. हाँ

45. जीवात्मा कितने प्रकार के कर्म कर सकती है?

उ. जीवात्मा चार प्रकार के कर्म कर सकती है –
शुभ, अशुभ, मिश्रित, निष्काम

46. जीव और ईश्वर में क्या समानता है?

उ. दोनों चेतन हैं, पवित्र हैं, अविनाशी हैं।

47. आत्मा के कर्म करने के साधन कौन से हैं?

उ. आत्मा के कर्म करने के साधन

1. अंत:करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार)
2. हाथ
3. पैर
4. आँख
5. जीभ
6. नाक
7. कान और
8. मुँह

48. क्या जीवात्मा के कार्य ईश्वर की मर्जी से होते हैं?

उ. नहीं। जीव कार्य करने में स्वतंत्र है।

49. जीवात्मा भिन्न-भिन्न योनि (शरीर) क्यों प्राप्त करता है?

उ. अपने कर्मों के अनुसार यह मनुष्य, पशु, पक्षी, कीटाणु आदि का शरीर धारण करता है।

50. क्या ईश्वर ने मनुष्यों व अन्य प्राणियों को सुख दुःख भोगने के लिये जन्म दिया है?

उ. नहीं। ईश्वर ने हम पर जन्म को थोपा नहीं है। यह जन्म हमारे कर्मो का फल है। विभिन्न कर्म करने के कारण ही हम अलग अलग योनियों में जन्म लेते हैं।

- पुण्य कर्म करेंगे तो सुख भोगना पड़ेगा।
- पाप कर्म किए हैं तो दु:ख भोगना पड़ेगा।
- निष्काम कर्म हैं तो मोक्ष (जन्म- मृत्यु से मुक्ति) प्राप्त होगा।

51. जीवात्मा के दुःखों के क्या कारण हैं?

उ. जीवात्मा के दु:ख का मूल कारण मिथ्या ज्ञान है।

52. क्या ईश्वर जीव के कर्मों को पहले से जानता है?

उ. नहीं। उसके भविष्य में किए जाने वाले कर्मों को ईश्वर भी नहीं जानता है क्योंकि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। हाँ, जीव के किए हुए सभी कर्मों को ईश्वर जानता है।

53. क्या जीव का नाश या मृत्यु होती है?

उ. नहीं। यह नित्य है।

54. क्या जीवात्मा को ईश्वर बनाता है?

उ. नहीं। यह नित्य है।

55. क्या जीवात्मा सदैव रहता है?

उ. हाँ। यह हमेशा से है।

56. जीवात्मा कर्म करने में स्वतंत्र है या परतंत्र?

उ. जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। लेकिन अपने कर्म का फल भोगने में परतंत्र है।

57. जीवात्मा शरीर में कहाँ रहता है?

उ. यह शरीर में मुख्य रूप से हृदय के निकट स्थान विशेष गड्ढे के अंदर रहता है।

– गौण रूप से यह नेत्र, कंठ आदि स्थानों में भी निवास करता है।

58. एक शरीर में एक ही जीवात्मा रहता है या अनेक?

उ. एक शरीर में एक ही जीवात्मा रहता है। अनेक जीवात्माएँ नहीं रहती हैं।

– हाँ। दूसरे शरीर से युक्त दूसरा जीवात्मा किसी शरीर में रह सकता है जैसे माँ के पेट में उसका बच्चा ।

59. जीवात्मा शरीर को कैसे चलाता है?

उ. यह अपने अंत:करण और इंद्रियों की सहायता से अपना शरीर चलाता है।

60. क्या जीव परमात्मा का अंश है?

उ. नहीं। यदि ऐसा होता तो यह अज्ञानी नहीं होता।

61. जीवात्मा शरीर क्यों धारण करती है?

उ. अपनी अविद्या के कारण

62. जीवात्मा हाड़माँस के शरीर में क्यों रहना पसंद करती है?

उ. आत्मा को अविद्या के कारण यह शरीर अच्छा लगता है। अपनी अविद्या दूर होने पर (ब्रह्म ज्ञान के बाद) आत्मा मोक्ष प्राप्त करना चाहती है।

62 आत्मा और शरीर में क्या अंतर है?

उ. 1. आत्मा उत्पन्न नहीं होती है।
- शरीर उत्पन्न होता है।

2. आत्मा चेतन है।
- शरीर जड़ है।

3. आत्मा का नाश नहीं होता है। यह केवल शरीर बदलती है।
- शरीर की मृत्यु होती है ।

4. आत्मा बूढ़ी नहीं होती है
- शरीर बूढ़ा होता है ।

5. आत्मा आँख से नहीं दिखती है।
- शरीर आँख से दिखता है।

6. आत्मा का भोजन शास्त्र ग्रंथों का स्वाध्याय, सत्संग, ईश्वर भक्ति और परोपकार है।
- शरीर का भोजन अनाज, वनस्पतियाँ , फल आदि हैं।

नोट :

आजकल अधिकतर आत्माएँ भूखी ही रहती हैं। फलस्वरूप शरीर छोड़ने के बाद निम्न योनियों में भटकती रहती हैं।

7. आत्मा स्वस्थ्य शरीर में रहती है और शरीर के अति रोग ग्रस्त होने पर या बहुत बूढ़ा होने पर इसको छोड़ जाती है।

8. आत्मा, इस शरीर द्वारा किए गए पाप–पुण्य कर्मों का लेखा–जोखा अपने साथ, शरीर की मृत्यु के बाद, ले जाती है।

9. इस लेखे–जोखे के अनुसार ही आत्मा को नई योनि (शरीर), आयु और भोग मिलते हैं।

63. क्या जीवात्मा और परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव एक से हैं?

उ. नहीं। बहुत से गुण कर्म स्वभाव अलग अलग हैं।

64. क्या आत्मा का कोई लिंग होता है?

उ. नहीं

65. क्या आत्मा स्थान घेरती है?

उ. नहीं। यह अति सूक्ष्म है। एक सुई की नोक पर विश्व की सभी जीवात्माएँ आ सकती हैं।

66. हमें जीवात्मा का स्वरूप अलग–अलग क्यों दिखाई देता है?

उ. जीवात्मा के अलग–अलग भेद शरीर, बुद्धि , ज्ञान, बल, कर्म आदि के कारण प्रतीत होता है।

67. जीवात्मा के गुण व कर्म बताइए?

आत्मा

- सूक्ष्म है
- नित्य है
- अजर है
- अमर है
- सत्य है
- एकदेशी है

- अल्पज्ञ है
- कर्म करने में स्वतंत्र है
- फल भोगने में ईश्वराधीन है
- इसमें रंग, रूप, भार, गंध नहीं है।

68. जीवात्मा के लक्षण बताइए?

उ. इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान, दु:ख-सुख की अनुभूति करना जीवात्मा के लक्षण हैं।

69. जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव जानने से क्या लाभ है?

उ. निम्न लाभ हैं -

- हमारा शरीर पर अधिकार हो जाता है ।
- इन्द्रियों पर नियंत्रण हो जाता है ।
- मन पर नियंत्रण होता है
- हम बुरे कार्यों को करने से बचते हैं।
- शरीर को स्वस्थ्य रखने का प्रयत्न करते हैं।

70. जीवात्मा की मुक्ति क्या है?

जन्म - मरण से छूटना

नोट :- निराकार ईश्वर की उपासना हेतु पढ़ें : वैदिक विचार संग्रह, भाग-1, 2 व 3 एवं प्रार्थना-उपासना विधि

प्रकृति/सृष्टि सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान

71. अनादि किसे कहते हैं?

उ. जिस वस्तु की उत्पत्ति ना हो, जिसका ना प्रारम्भ हो और ना ही अन्त हो, उसे अनादि कहते हैं।

72. अनादि शब्द के पर्यायवाची शब्द बताइये?

उ. स्वयंभू, स्वयं-सिद्ध (internal), शाश्वत

73. अनादि वस्तुएँ कितनी हैं?

उ. तीन

74. अनादि वस्तुओं के नाम बताओ?

उ. 1. ईश्वर
2. जीवात्मा
3. प्रकृति

75. प्रकृति किसे कहते हैं?

उ. परमाणुओं के समूह को प्रकृति कहते हैं।

76. प्रकृति कैसे बनी है?

उ. प्रकृति सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से बनी है।
- यह परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म हैं।
- यह जड़ पदार्थ हैं।
- इनमें ज्ञान व चेतन शक्ति नहीं है।

77. क्या सतोगुण (सत्त्व), रजोगुण (रज), तमोगुण (तम) द्रव्य हैं या गुण?

उ. ये द्रव्य हैं। लेकिन यह सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के नाम से जाने जाते हैं।

78. क्या यह परमाणु अनादि और अनन्त हैं?

उ. हाँ

79. क्या प्रकृति वास्तविक है?

उ. हाँ

80. क्या प्रकृति के कुछ नियम हैं?

उ. हाँ। ईश्वर ने प्रकृति को कुछ नियमों के अंदर रखा हुआ है।

81. क्या प्रकृति अपने नियमों का उल्लंघन करती है?

उ. कदापि नहीं।

82. सूर्य, चाँद, तारे किसके सहारे खड़े हैं?

उ. यह एक दूसरे के आकर्षण के सहारे टिके हुए हैं। लेकिन मुख्य सहारा ईश्वर का है

83. क्या प्रकृति में जीवात्माओं को उत्पन्न करने का सामर्थ है?

उ. नहीं

84. क्या प्रकृति से जीवों के समस्त दुःख दूर हो सकते हैं?

उ. नहीं।

85. सृष्टि किसे कहते हैं?

उ. प्रकृति (परमाणुओं) से वने सूर्य, चाँद, तारे, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, फल, फूल, अन्न आदि को सृष्टि कहते हैं। – सृष्टि एक निश्चित काल के लिये बनती है। अनादि नहीं है।

86. सृष्टि किससे बनती है?

उ. सृष्टि–प्रकृति से बनती है।

87. सृष्टि (संसार) कौन बनाता है?

उ. ईश्वर अपनी शक्ति द्वारा प्रकृति से संसार रचता है।

88. क्या यह सृष्टि (संसार) माया या स्वप्न है?

उ. नहीं। यह संसार वास्तविक है।

89. क्या सृष्टि को कोई देवी, देवता, महापुरुष, योगी, गुरु, भगवान (सिद्ध पुरुष) बना सकता है?

उ. नहीं।

90. यदि देवी देवता, महापुरुष (पुरुषोत्तम राम, योगीराज कृष्ण आदि) योगी, गुरु, संत, भगवान सृष्टि नहीं बना सकते, तो क्या उनको ईश्वर/भगवान मानकर उनकी पूजा या उपासना करना उचित है?

उ. नहीं। महापुरुषों, गुरुओं, योगियों के आदर्श जीवन के अनुसार हमें अपना आचरण करना चाहिये।

91. क्या महापुरुष, योगी, संत, भगवान की पूजा उपासना करना वेद विरुद्ध है?

उ. हाँ। यह वेद सम्मत नहीं है।

92. क्या संसार बनाने वाले सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वव्यापक ईश्वर या उसके गौण नाम का चित्र या मूर्ति बनाना उचित है?

उ. नहीं।

93. क्या सृष्टि अनादि है?

उ. नहीं। यह एक निश्चित काल के बाद नष्ट हो जाती है।

94. संसार (सृष्टि) को नष्ट समाप्त कौन करता है?

उ. एक निश्चित समय के वाद ईश्वर सृष्टि को नष्ट कर देता है।

95. क्या सृष्टि का आरम्भ और अंत- दोनों हैं?

उ. हाँ! दोनों हैं। यह क्रम बराबर चलता रहता है।

96. सृष्टि में कौन से तत्त्व काम कर रहे हैं?

उ. सृष्टि में तीन तत्त्व काम कर रहे हैं:

1. ईश्वर
2. जीवात्मा और
3. प्रकृति

97. ईश्वर ने सृष्टि किसके लिये बनाई है?

उ. ईश्वर ने सृष्टि जीवात्माओं के

-भोग के लिये बनाई है।

- सुख के लिये बनाई है।

- मोक्ष प्राप्त करने के लिये बनाई है।

:: नोट ::

1. वर्तमान में अधिकतर आत्माएँ (मनुष्य) भोग और सुख में ही व्यस्त हैं। मोक्ष की याद उनको बुढ़ापे में आती है जब समय निकल चुका होता है।

2. वेदों के ज्ञान व उनके अनुसार आचरण के अभाव में ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति और मोक्ष की ओर अग्रसर होना असम्भव है।

3. इसलिये वेद और वैदिक विचारों को ना केवल युवा अवस्था में ही पढ़ना शुरू करें बल्कि उनके अनुसार अपनी दिनचर्या भी बनाएँ।

98. ईश्वर ने सृष्टि क्यों बनाई?

उ. ईश्वर ने सृष्टि जीवात्मा के हित के लिये बनाई है ताकि :

– जीवात्मा दु:ख और वासनाओं से मुक्त हो सके
– जीवात्मा मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त कर सके ।

99. ईश्वर प्रकृति से सृष्टि कैसे बनाता है?

उ. ईश्वर परमाणुओं (सत, रज, तम) में हलचल पैदा कर देता है। हलचल के कारण वे आपस में जुड़ना शुरू कर देते हैं। इसमें लाखों वर्ष लगते हैं और धीरे धीरे सृष्टि के सब पदार्थ बन जाते हैं।

100. क्या सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि प्रत्येक सृष्टि में बनते हैं?

उ. हाँ

101. एक सृष्टि की आयु कितनी होती है?

उ. वेदों के अनुसार 4 अरब 32 करोड़ वर्ष होती है।

102. इस आयु की गणना कैसे होती है?

उ. यह आयु सतयुग, द्वापर युग और कलियुग से नापी जाती है।

103 ऋषि ग्रंथों के आधार पर यह वर्तमान सृष्टि कब बनी?

उ. यह संसार लगभग 1,96,08,53,113 वर्ष पूर्व बना (लगभग)।

104 ऋषि ग्रंथों के आधार पर यह संसार कितने वर्ष तक औ चलता रहेगा?

उ. यह संसार 2,35,91,46,887 वर्ष तक और चलेगा (लगभग)

वेद सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान

105. वेद किसे कहते हैं?

उ. वेद शब्द का अर्थ है – ज्ञान। वेद ईश्वरीय वाणी है।

106. वेद का प्रकाश किसने किया?

उ. ईश्वर ने वेदों का प्रकाश किया।

107. ईश्वर ने वेदों का ज्ञान क्यों दिया?

उ. ईश्वर ने मनुष्य के कल्याण के लिये वेद ज्ञान दिया।

108. वेदों का ज्ञान ईश्वर ने कब दिया?

उ. वेदों का ज्ञान ईश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में दिया?

109. वेद की भाषा कौन सी है?

उ. वेद की भाषा ''वैदिक संस्कृति'' है। (लौकिक संस्कृत नहीं)

110. क्या वेद मंत्रों का हिंदी और अंग्रेजी में अनुवाद उपलब्ध है?

उ. हाँ। उपलब्ध है।

111. क्या ईश्वर का ज्ञान बदलता रहता है?

उ. नहीं। वेद ज्ञान संसार के सभी मनुष्यों के कल्याण के लिये है। इसमें सब प्रकार का ज्ञान विज्ञान है और यह ज्ञान सृष्टि के क्रम व नियमानुसार है। इसलिए यह बदलता नहीं है।

112. वेद कितने हैं?

उ. वेद चार हैं।

113. चार वेदों के नाम क्या हैं?

उ. – ऋग्वेद – यजुर्वेद
– सामवेद – अथर्ववेद

114. वेद ज्ञान ईश्वर ने कैसे दिया?

उ. वेद ज्ञान ईश्वर ने चार ऋषियों के द्वारा दिया।

115. चारों ऋषियों के नाम बताइए?

उ. 1. अग्नि ऋषि 2. वायु ऋषि
3. आदित्य ऋषि 4. अंगिरा ऋषि

116. प्रत्येक ऋषि को कौन से वेद का ज्ञान दिया?

उ. 1. अग्नि ऋषि को ऋग्वेद का ज्ञान दिया।
2. वायु ऋषि को यजुर्वेद का ज्ञान दिया।
3. आदित्य ऋषि को सामवेद का ज्ञान दिया।
4. अंगिरा ऋषि को अथर्ववेद का ज्ञान दिया।

117. ईश्वर निराकार है। फिर उसने ऋषियों को वेद ज्ञान कैसे दिया?

उ. ईश्वर ने चार ऋषियों को समाधि अवस्था में, उनकी आत्मा में, यह ज्ञान दिया।

118. वेद ज्ञान का संसार में कैसे प्रचार प्रसार हुआ?

उ. गुरु-शिष्य प्रथा से वेद ज्ञान का प्रचार हुआ। गुरु बोलते थे और उनके शिष्य सुनते थे।

119. ईश्वर ने प्रारम्भ में इन चार ऋषियों को ही वेद ज्ञान क्यों दिया?

उ. इन चार ऋषियों की आत्माएँ अत्यधिक पवित्र थीं। ये तपस्वी थे। इसलिए ईश्वर ने उनको समाधि अवस्था में वेद ज्ञान दिया।

120. वेदों के विषय कौन-२ से हैं?

उ. वेद विषय

ऋग्वेद - ज्ञान
यजुर्वेद - कर्म

सामवेद – उपासना

अथर्ववेद – विज्ञान

121. वेद पुस्तक रूप में कब बने?

उ. सृष्टि के प्रारम्भ में, कुछ काल के बाद, वेद पुस्तक रूप में बने– ऐसी सम्भावना है।

122. वेदों में साधारणतया क्या लिखा है?

उ. वेदों में

- ईश्वर जीव प्रकृति का विज्ञान है।
- ज्ञान, कर्म, उपासना के बारे में लिखा है।
- परिवार, समाज, देश, संसार की उन्नति का तरीका बताया है।

123. वेद नित्य हैं या अनित्य?

उ. वेद नित्य है।

124. कौन से वेद में कितने मंत्र हैं?

ऋग्वेद 10522

यजुर्वेद 1975

अथर्ववेद 5977

सामवेद........1875 (कुल मंत्र : 20349)

125. क्या वेद की पुस्तक भी नित्य है?

उ. नहीं। पुस्तक कागज और स्याही से बनती है। इसलिये नित्य नहीं हैं।

126. क्या वेदों में इतिहास है?

उ. नहीं। वेद सृष्टि के प्रारम्भ में वने हैं। इसलिये इनमें कोई इतिहास नहीं है।

127. क्या वेदों में राजा, ऋषि, पहाड़, नदी का नाम है?

उ. नहीं

128. क्या वेदों में ज्ञान, विज्ञान आदि का वर्णन प्रकृति के नियमों के अनुसार है?

उ. हाँ

129. क्या ईश्वर ने प्रवचन के रूप में वेद ज्ञान दिया?

उ. नहीं। वेद ज्ञान मंत्रों के रूप में है ।

130. क्या वेद ईश्वरीय वाणी है?

उ. हाँ

131. किसी ग्रंथ के ईश्वरीय वाणीं होने की क्या शर्तें होती हैं?

उ. ईश्वरीय वाणी होने के लिये निम्न शर्तें होना जरूरी है :-

1. ईश्वरीय वाणीं सृष्टि के प्रारम्भ में हो।
2. यह संसार के सब मनुष्यों के लिए हो अर्थात् पक्षपात रहित समान रूप से सब मनुष्यों के लिये विधि, नियम, अनुशासन का विधान दिया हो।
3. इसकी भाषा ऐसी हो जिसे सीखने के लिये सभी मनुष्यों को एक जैसा परिश्रम करना पड़े अर्थात् यह मनुष्य कृत भाषा में ना हो।
4. इसमें सब प्रकार का ज्ञान विज्ञान हो।
5. यह ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव के अनुसार हो।
6. यह सृष्टि के क्रम व नियमानुसार हो अर्थात इसमें सृष्टि के प्रत्यक्ष नियमों के विरुद्ध सिद्धान्तों का वर्णन ना हो

7. इसमें कोई मनुष्यों का इतिहास ना हो।
8. यह समस्त शंकाओं से दूर हो और इसमें अंध-विश्वास, पाखंड अज्ञानयुक्त, अप्रामाणिक बातों का वर्णन ना हो।
9. इसमें मनुष्य के सर्वोत्कृष्ट उन्नति हेतु सब प्रकार की उन्नति के उपाय बताये गये हों।
10. इसमें कोई परिवर्तन ना हो, शाश्वत हो और विज्ञान विरुद्ध बातें ना हों।

132. क्या वेद ईश्वरीय वाणीं की शर्तों को पूरा करता है?

उ. हाँ। पूर्ण रूप से।

133. क्या बाईबल, कुरान, गीता, पुराण, ग्रंथ साहिब ईश्वरीय वाणीं की शर्तों को पूरा करते हैं?

उ. नहीं।

134. क्या कोई ऐसा ग्रंथ है जिसमें वेद की शिक्षाओं का सार रूप में वर्णन किया गया हो?

उ. हाँ, है, इसका नाम सत्यार्थप्रकाश है।

135. सत्यार्थप्रकाश किसने लिखा है?

उ. आर्य समाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द जी ने इसको लिखा है।

136. वेद पढ़ने का अधिकार किसको है?

उ. वेद पढ़ने का अधिकार सभी मनुष्यों को है।

137. क्या स्त्रियों को भी वेद पढ़ने का अधिकार है?

उ. हाँ।

138. क्या वेदों में मूर्ति पूजा का विधान है?

उ. बिलकुल नहीं।

139.क्या वेदों में ईश्वर को साकार मानकर उसकी पूजा का विधान है?

उ. नहीं

140. ईश्वरीय वाणी ''वेद'' की शिक्षाओं को सार रूप में बताएँ?

उ. वेद की सार रूप में कुछ शिक्षाएँ :-

1. सदैव सत्य और प्रिय बोलना।
2. किसी भी प्रकार की चोरी ना करना, किसी के मानव अधिकारों का हनन ना करना।
3. मन व इंद्रियों को अपने वश में रखना।
4. सत्य के ग्रहण और असत्य के छोड़ने में सदैव तत्पर रहना।
5. अविद्या का नाश एवं विद्या की वृद्धि करना।
6. आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का या अनावश्यक विचारों का संग्रह ना करना।
7. सब कार्य ईश्वर की प्राप्ति के लिये करना, करवाना।
8. ईश्वर, जीव, प्रकृति को साध्य, साधक और साधन के रूप में भली प्रकार जानकर व्यवहार करना।
9. मन, वाणी व शरीर से किसी को किसी प्रकार का कष्ट ना देना और ईश्वर की न्याय-व्यवस्था पर दृढ़ विश्वास रखना।
10. सत्संग, स्वाध्याय, यज्ञ, योगासन व सात्विक भोजन से मन, शरीर और वातावरण को शुद्ध और पवित्र करना।
11. जीवन के लक्ष्य ''मोक्ष'' को प्राप्त करने के लिये पूर्ण पुरुषार्थ करना और पूर्ण प्रयास के बाद जो भी फल मिले, उससे संतुष्ट रहना।
12. ईश्वर के सर्वोत्तम नाम ''ओ३म्'' का सतत चिंतन करना

और ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना।

13. अष्टांग योग का पालन करना।

14. जीवन में तपस्वी बनकर रहना, धैर्यवान होना।

15. निष्काम भाव से परोपकार के कार्यों में संलग्न रहना और समाज व राष्ट्र की आत्मिक व सामाजिक उन्नति करना।

141. क्या मूर्ति पूजा करना वेद विरुद्ध है?

उ. हाँ। **न तस्य प्रतिमा अस्ति** (यजुः 32.3)

142. क्या वेदों में अवतारवाद का वर्णन या प्रमाण है?

उ. नहीं।

143. सबसे बड़ा वेद कौन सा है? उ. ऋग्वेद

144. प्रार्थना-उपासना के लिये मुख्य रूप से कौन सा वेद है? उ. सामवेद

145. वेदों के सहायक दर्शन शास्त्र और उनके रचयितों (लेखकों) के नाम बताओ?

1. न्याय दर्शन - गौतम मुनि,
2. वैशेषिक दर्शन -कणाद मुनि,
3. योग दर्शन - पतंजलि मुनि,
4. मीमांसा दर्शन - जैमिनि मुनि,
5. सांख्य दर्शन - कपिल मुनि,
6. वेदांत दर्शन - ऋषि व्यास

धर्म सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान

146. धर्म किसे कहते हैं?

उ. अच्छे कर्मों के आचरण को धर्म कहते हैं। अर्थात् जो व्यवहार हम अपने लिये चाहते हैं वही व्यवहार दूसरों के साथ करना धर्म है।

147. भारतीयों का प्राचीनतम धर्म कौन सा है?

उ. हम भारतीयों का प्राचीनतम धर्म ''वैदिक धर्म'' है। (हिंदू धर्म नहीं)

148. हम वैदिक धर्मियों की धार्मिक पुस्तक कौन सी है?

उ. ''वेद'' है।

149. क्या पुराण हमारी धार्मिक पुस्तक है?

उ. नहीं।

150. पृथ्वी पर वैदिक साम्राज्य कब से कब तक रहा?

उ. पृथ्वी पर वैदिक साम्राज्य सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर महाभारत काल पर्यन्त अर्थात् लगभग 1,96,08,48,000 वर्ष तक रहा।

151. शंकराचार्य का काल कितना पुराना है?

उ. यह लगभग 2300 वर्ष पुराना है।

152. हिंदू-पुराण मत (मूर्ति पूजा आदि) कितना पुराना है?

उ. यह लगभग 2200 वर्ष पुराना है।

153. ईसाई मत कितना पुराना है?

उ. यह लगभग 2000 वर्ष पुराना है।

154. इस्लाम मत कितना पुराना है?

उ. यह लगभग 1400 वर्ष पुराना है।

155. सिक्ख मत कितना पुराना है?

उ. यह लगभग 500 वर्ष पुराना है।

156. ब्रह्मकुमारी, राधास्वामी, स्वामी नारायण, गायत्री परिवार, आनंद मार्ग आदि मत कितने वर्ष पुराने हैं?

उ. उपरोक्त सभी मत/वर्तमान समुदाय लगभग 100–150 वर्ष पूर्व के आस पास काल के ही हैं।

157. क्या वैदिक धर्म सब से पुराना है?

उ. हाँ।

158. वैदिक काल में विश्व के लोग किसकी प्रार्थना उपासना करते थे?

उ. वे लोग निराकार ईश्वर को ही मानते थे।

159. रामायण काल में लोग किस ईश्वर को मानते थे?

उ. निराकार ईश्वर को मानते थे।

160. महाभारत काल में लोग किस ईश्वर को मानते थे।

उ. निराकार ईश्वर को मानते थे।

161. वैदिक साम्राज्य के काल में विश्व शासन की भाषा कौन सी थी?

उ. संस्कृत

162. वैदिक काल में भारत में शिक्षा प्रणाली कौन सी थी?

उ. गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

163. क्या वैदिक धर्म में ईश्वर का अवतार लेना बताया गया है?

उ. नहीं बताया गया है।

164. क्या वैदिक धर्म में त्रुटि, भूल, दोष, पाप के लिए क्षमा का विधान है?

उ. नहीं है।

165. क्या वैदिक धर्म में छुआछूत, जाति-भेद , बहु-विवाह का विधान है?

उ. नहीं है।

166. क्या वैदिक धर्म में भूत-प्रेत, मृतकों के नाम पिण्डदान का विधान है?

उ. नहीं है।

167. क्या वैदिक धर्म में बलि प्रथा (यज्ञ में बलि आदि) का विधान है?

उ. नहीं है।

168. क्या वैदिक धर्म में जन्म-कुंडली, हस्तरेखा, नवग्रह पूजा का विधान है?

उ. नहीं है।

169. क्या वैदिक धर्म में मांसाहार, मद्यपान का विधान है?

उ. नहीं है।

170. क्या वैदिक धर्म में जादू-टोना, डोरा-धागा, फलित ज्योतिष, पवित्रता या पाप कर्म क्षमा होने के लिये नदी स्नान का विधान है?

उ. नहीं है।

171. क्या वैदिक धर्म में ताबीज धारण करना, मजार पूजा करना, सूर्य को जल देना का विधान है?

उ. नहीं है।

172. क्या वेदों के अनुसार पाप कर्मों के फल माफ हो सकते हैं?

उ. नहीं।

173. यदि ईश्वर, पश्चाताप करने पर, पाप कर्म क्षमा कर दे तो क्या हानि है?

उ. ईश्वर न्यायकारी है। ईश्वर के इस गुण का उल्लंघन हो जाएगा।

174. यदि पाप कर्म क्षमा नहीं होते, तो उपासना करने से क्या लाभ है?

उ. ईश्वर उपासना करने से लाभ :

- बुद्धि पवित्र होती है
- आत्मिक बल मिलता है
- मन में उत्तम विचार आते हैं
- आनंद की प्राप्ति होती है
- मनुष्य भविष्य में बुरे काम कम करता है या बुरे काम नहीं करता है
- जीवन के लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसर होता है

175. वैदिक धर्म में मनुष्य जीवन का क्या लक्ष्य बताया है?

उ. मोक्ष प्राप्त करना अर्थात समस्त दुखों से छूटना बताया हैं (जन्म-मरण से मुक्ति)

176. सभी दुखों से छूटना कैसे संभव है?

उ. आध्यात्मिक अज्ञान के नष्ट हो जाने पर सभी दुखों से छूटना संभव है।

177. आध्यात्मिक अज्ञान को कैसे नष्ट कर सकते हैं?

उ. आध्यात्मिक अज्ञानता को नष्ट करने के उपाय निम्न हैं :-

- वेदों का, आर्ष ग्रंथों का और वेदों पर आधारित पुस्तकों का अध्ययन करना
- जीवन में यम-नियम का दृढ़ता से पालन करना
- केवल निराकार ईश्वर की ही उपासना करना और
- निष्काम कर्म करना

178. क्या पुराणों की रचना ऋषि वेद व्यास ने की थी?

उ. नहीं। पुराणों की रचना के समय ऋषि वेद व्यास को देह छोड़े लगभग 2500 वर्ष हो चुके थे। इसलिये वेद व्यास ने पुराणों की रचना नहीं की है।

179. पुराणों को पंडितों द्वारा ऋषि वेद व्यास कृत क्यों बताया जाता है?

उ. लोगों को भ्रमित करके अपना स्वार्थ पूरा करने के लिये।

180. पुराणों की रचना कैसे हुई?

उ. जैन मत में 18 स्कन्ध नाम की पुस्तकें लिखी गई थीं। लोगों को नास्तिक होने से बचाने के लिये शायद किसी ने पुराणों की रचना की।

अथवा / और महाभारत के युद्ध के बाद अधिकतर वैदिक विद्वानों की मृत्यु होने पर वेद ज्ञान धीरे धीरे लुप्त होता चला गया और कुछ स्वार्थी लोगों ने पुराणों की रचना करके इनको वेद व्यास कृत कह कर प्रकाशित कर दिया।

181. पुराणों में अवतारों, मूर्ति पूजा और साकार पूजा का वर्णन मिलता है। क्या यह ठीक है?

उ. नहीं। पुराणों में कपोल-कल्पित बातों की भरमार है। यह बातें

प्रकृति के नियमों के विरुद्ध हैं। वेदों की आज्ञाओं के विरुद्ध हैं। हाँ। कुछ बातें सत्य व शिक्षाप्रद हैं जो कि वेदों से ली गई हैं।

182. क्या ऋषि दयानन्द ने पुराणों को मान्यता दी है?

उ. नहीं। उनके विचार में पुराणों को लिखने वाले को माँ के गर्भ में ही मर जाना चाहिये था।

183. क्या पुराणों को मानना उचित है?

उ. नहीं।

184. क्या पुराण ईश्वरीय वाणी हैं?

उ. बिलकुल नहीं।

185. फिर वर्तमान पंडित/मंदिर के पुजारी पुराणों का समर्थन क्यों करते हैं? क्या वे दंड के अधिकारी नहीं हैं?

उ. निजी स्वार्थ के लिये। पुराणों का समर्थन करने से उनकी जीविका चल रही है। ईश्वर की न्याय व्यवस्था में उनको इस जन्म में अथवा मृत्यु उपरांत दंड अवश्य मिलता है।

186. वैदिक धर्म में कर्मफल सिद्धांत क्या है?

उ. मनुष्य जितने भी कार्य–अच्छे या बुरे करता है, उन सबका फल सुख–दु:ख के रूप में अवश्य मिलता है और पाप कर्म कभी भी क्षमा नहीं होते हैं।

नोट :– कर्मफल व्यवस्था को विस्तार से समझने हेतु पढ़ें : वैदिक विचार संग्रह–भाग–1 लेखक मदन अनेजा

187(i) वैदिक धर्म में चार पुरुषार्थ कौन से हैं?

उ. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

187(ii) धर्म शब्द का सरल अर्थ क्या है?

उ. जो व्यवहार हम दूसरों से अपने लिये चाहते हैं, वही व्यवहार दूसरों के साथ करना धर्म है।

188. अर्थ किसे कहते हैं?

उ. धर्म के अनुसार जो धन या भौतिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, उसे अर्थ कहते हैं।

189. काम किसे कहते हैं?

उ. धर्म के अनुसार धन कमाकर जीवन की कामनाओं को पूर्ण करना ''काम'' कहलाता है।

190. मोक्ष (मुक्ति) किसे कहते हैं?

उ. दुखों से छूटना (जन्म-मरण के चक्र से छूटना) को मोक्ष कहते हैं।

191. पाप किसे कहते हैं?

उ. अधर्माचरण को पाप कहते हैं।

192. अधर्माचरण किसे कहते हैं?

उ. ईश्वर की आज्ञाओं, वेद, ऋषियों और महापुरुषों के निर्देशों के विपरीत व्यवहार करने का नाम अधर्माचरण है।

193. क्या पुराणों में वर्णित मूर्ति पूजा आदि अधर्माचरण में आता है?

उ. इसका निर्णय आप अब स्वयं कर सकते हैं।

194. वैदिक धर्म की पहली शिक्षा क्या है?

उ. केवल निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वर की ही पूजा उपासना करनी चाहिये और किसी की नहीं।

195. वैदिक धर्म की दूसरी शिक्षा क्या है?

उ. सब मनुष्यों को, सबकी भलाई के लिये, सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। किसी को भी नीच या अछूत समझना वैदिक धर्म की शिक्षा के विरुद्ध है।

196. वैदिक धर्म की तीसरी शिक्षा क्या है?

उ. वैदिक धर्म "कर्म फल सिद्धान्त" में विश्वास रखता है। ईश्वर न्यायकारी है। मनुष्य जैसा कर्म–अच्छा या बुरा–करेगा, वैसा ही फल उसको सुख–दु:ख के रूप में मिलेगा।

197. वैदिक धर्म की चौथी शिक्षा क्या है?

उ. मनुष्य को अपने शरीर, मन, आत्मा–तीनों की शक्तियों को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिए शुभ कर्म, व्यायाम, प्राणायाम, योगाभ्यास, वेदों का स्वाध्याय नित्य करना चाहिये।

198. वैदिक धर्म की पाँचवीं शिक्षा क्या है?

उ. पाँचवीं शिक्षा है–यज्ञ की भावना को पैदा करना और बढ़ाना। सेवा और स्वार्थ–त्याग के भाव को धारण करना।

199. यज्ञ से क्या तात्पर्य है?

उ. यज्ञ से तात्पर्य है–

1. देवपूजा : प्रतिदिन अग्निहोत्र (यज्ञ) करना, वैदिक विद्वानों और धर्मात्माओं का आदर करना।

2. संगतिकरण : लोगों में एकता एवं मेल–जोल पैदा करना।

3. परोपकार : अपनी सामर्थ के अनुसार प्रति दिन गरीब, अनाथ, दु:खी और अच्छी संस्थाओं को दान देकर सहायता करना।

200. वैदिक धर्म की छटी शिक्षा क्या है?

उ. पंच महायज्ञ का पालन करना – ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ,बलिवैशवदेव यज्ञ, अतिथि यज्ञ

अध्यात्म हेतु और जानकारी)

201. (क) आर्य किसे कहते हैं?

उ. उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव वाले मनुष्य को आर्य कहते हैं।

201(ख) हमारे देश का सबसे पुराना नाम क्या है?

उ. आर्यावर्त

202(क) क्या आर्य लोग भारत वर्ष में बाहर से आये थे?

उ. नहीं। हम आर्य भारत के मूल निवासी हैं।

202(ख) मानव सृष्टि की उत्पत्ति कहाँ हुई?

उ. तिब्बत में

203. आर्य समाज क्या है?

उ. आर्य समाज एक विचार धारा है–सम्प्रदाय नहीं है। यह वैदिक धर्म का अनुयायी है। वर्तमान में यह एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है।

204. स्तुति किसे कहते हैं?

उ. किसी के गुणों का कीर्तन, श्रवण और ज्ञान प्राप्त करना स्तुति कहलाता है।

205. प्रार्थना किसे कहते हैं?

उ. किसी भी कार्य को करने के लिये , पूर्ण पुरुषार्थ के बाद, ईश्वर से सहयोग माँगना प्रार्थना कहलाता है।

206. उपासना किसे कहते हैं ?

उ. ईश्वर को व्यापक मानकर, योगाभ्यास द्वारा (1) उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने को करना और (२) उसका चिन्तन करना उपासना कहलाती है।

207. गुरु किसे कहते हैं ?

उ. माता-पिता और जो सत्य विद्या (वेद आदि) का ग्रहण कराये और असत्य को छुड़ावे, उसे गुरु कहते हैं।

208. पंडित किसे कहते हैं?

उ. जो सत्य असत्य का विवेक से जानने हारा, धर्मात्मा, सत्यवादी, सत्यप्रिय, विद्वान और सबका हितकारी होता है, उसे पंडित कहते हैं।

209. आचार्य किसे कहते हैं?

उ. जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराए, सब विद्याओं को पढ़ावे, उसे आचार्य कहते हैं।

210. तीर्थ किसे कहते हैं?

उ. सत्य भाषा, विद्या, सत्संग, योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादान आदि शुभ कार्यों को तीर्थ कहते हैं।

211. स्वर्ग किसे कहते हैं?

उ. स्वर्ग नाम सुख विशेष का है। यह पृथ्वी पर ही है-आकाश में नहीं है।

212. नरक किसे कहते हैं?

उ. नरक भी दु:ख विशेष को कहते हैं। यह भी पृथ्वी पर है-आकाश में नहीं है।

213. परोपकार किसे कहते हैं?

उ. दूसरे प्राणियों को सुख देने के लिए तन मन धन से प्रयत्न करना परोपकार है।

214. भूत-प्रेत किसे कहते हैं?

उ. जो बीत चुका है उसे भूत कहते हैं।

- लाश या मुर्दा शरीर को प्रेत कहते हैं।

215. क्या भूत-प्रेत कोई शक्ति या रूह है जो मनुष्य शरीर में आ जाती है?

उ. नहीं। यह एक काल्पनिक भ्रम है, पूर्णतः अंधविश्वास है।

216. कुछ तांत्रिक लोग भूत प्रेत का इलाज करते हैं। क्या यह ठीक है?

उ. बिलकुल ठीक नहीं है। उनके पास मानसिक रोगी को कभी भी नहीं ले जाना चाहिये।

यह मानसिक रोगियों (डिप्रेशन वाले) का आर्थिक व शारीरिक शोषण है।

217. फिर मानसिक रोगियों को ठीक करने का क्या उपाय है?

उ. मानसिक रोगियों को डॉक्टर-मनोचिकित्सक से इलाज करवाना चाहिये।

218. क्या मानसिक रोग (डिप्रेशन) का पक्का इलाज उपलब्ध है?

उ. हाँ। मानसिक रोगी पूर्णतया ठीक हो जाते हैं।

219. श्राद्ध और तर्पण किसे कहते हैं?

उ. श्रद्धापूर्वक जीवित माता-पिता को भोजन आदि कराने को श्राद्ध कहते हैं।

– जल, दूध, भोजन, वस्त्र आदि से तृप्त कराने की क्रिया को तर्पण कहते हैं।

220. वर्तमान में समाज में प्रचलित श्राद्ध प्रथा (मंदिर के पुजारियों को भोजन करवाना) कहाँ तक उचित है?

उ. उचित नहीं है । यह प्रथा वेद की आज्ञाओं के विरुद्ध है।

221. सांसारिक सुख व ईश्वर के सुख (आनंद) में क्या अंतर है?

उ. –सांसारिक पदार्थों का सुख क्षणिक है, दु:ख मिश्रित है।
– ईश्वर का सुख स्थाई है, पूर्ण तृप्ति देने वाला है। इसे ईश्वरीय आनंद भी कहते हैं।

222. विवेक किसे कहते हैं?

उ. सत्य आचरण का ग्रहण करना और असत्य आचरण का त्याग करना विवेक है।
ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना, उनके विरुद्ध कार्य ना करना और सृष्टि से उपकार लेना भी विवेक कहलाता है।

223. क्या पुराणों को मानना और मूर्ति पूजा करना विवेक-हीनता है?

उ. हाँ। यह वेदों की आज्ञाओं का उल्लंघन है।

224. वैराग्य किसे कहते हैं?

उ. भौतिक पदार्थों में मन ना लगाना, ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को समझकर उसकी आज्ञा का पालन करना और उसकी उपासना करना वैराग्य कहलाता है।

225. मुक्ति (मोक्ष) एक जन्म में होता है या अनेक जन्मों में?

उ. अनेक जन्मों में।

226. मुक्ति में जीव परमेश्वर से मिल जाता है या पृथक रहता है?

उ. पृथक रहता है।
यदि जीव ईश्वर से मिल जाये तो ईश्वरीय आनंद (सुख) कौन भोगेगा।

227. मोक्ष (मुक्ति) किसे प्राप्त नहीं होती है?

उ. जो व्यक्ति अधर्म या / और आध्यात्मिक अज्ञानता में फँसा हुआ है, उसे मुक्ति प्राप्त नहीं होती है । वह (आत्मा) जन्म–मरण के चक्र में फँसी रहती है।

228. आध्यात्मिक अज्ञानता से क्या तात्पर्य है?

उ. इसका अर्थ है –

- वेदानुसार निराकार ईश्वर की उपासना ना करके मूर्ति पूजा करना।
- यम–नियम का पालन ना करना।
- निष्काम कर्म ना करना।

228. मुक्ति के क्या साधन हैं?

उ. मुक्ति प्राप्त करने के साधन :

1. निराकार ईश्वर की ही उपासना करना।
2. यम–नियम का पालन करना। और
3. निष्काम कर्म करना

229. क्या मंदिरों में पैदल या रेंगकर जाने से अथवा हरिद्वार से कांवड़ / जल आदि लाने से ईश्वर या देवी देवता प्रसन्न होते हैं?

उ. नहीं। यह अंध–विश्वास है। समय, धन और परिश्रम– तीनों व्यर्थ में बर्बाद होते हैं।

230. क्या मजार पर जाकर मनौती/कामनाएँ पूर्ण होती हैं?

उ. नहीं। यह मान्यता अवैदिक है।

231. केवल हिंदू वर्ग ही मजार पर अधिकतर जाता है। क्यों?

उ. आध्यात्मिक अज्ञानता के कारण। वेदों का स्वाध्याय ना करने के कारण।

232. क्या ब्राह्मण द्वारा पूजा-पाठ करवाने से आत्माओं को शांति मिलती है?

उ. नहीं। कोई भी आत्मा शरीर छोड़ने के बाद भटकती नहीं है। शरीर की मृत्यु के बाद (अपने कर्मों के अनुसार) तुरंत दूसरा शरीर प्राप्त कर लेती है।

233. क्या ब्राह्मणों द्वारा सवा लाख गायत्री मंत्र का पाठ करवाने से दिवंगत आत्मा को शांति मिलती है?

उ. नहीं। यह अंधविश्वास है। मृत्यु वाले परिवार का आर्थिक शोषण है।

234. शरीर छोड़ने के बाद (मरने के बाद) कितने काल में मनुष्य नया जन्म लेता है?

उ. तत्काल।

235. क्या ''अनेकता में एकता'' की मान्यता ठीक है?

उ. नहीं। एकता के लिये धर्म, भाषा , संविधान, पूजा पद्धति में एकरूपता होना अनिवार्य है

236. धर्म के प्रकार बताइए?

उ. कोई कार्य धर्मानुसार है अथवा नहीं-इसके लिए वेद मनुष्य का मार्ग दर्शन करता है। वेद में धर्म की 11 शाखाएँ बताई हैं - कर्त्तव्य धर्म, सदाचार धर्म, दया धर्म, न्याय धर्म, सामाजिक एवं व्यावहारिक धर्म, अंत: पवित्रता धर्म, शरीर निष्ठा धर्म, आध्यात्मिक धर्म, साधनामय जीवन धर्म, ईश्वर परक धर्म और राष्ट्रपरक धर्म।

237. हमारे अन्य आदर्श ग्रंथ कौन-२ से हैं?

उ. - मनुस्मृति - वाल्मीकि रामायण - वेद व्यास कृत महाभारत

238. वर्ण किसे कहते हैं?

उ. मनुष्य का जैसा गुण और कर्म हो, उसको वैसा ही अधिकार देना वर्ण कहलाता है।

239. वर्ण व्यवस्था का आधार क्या है?

उ. वर्ण व्यवस्था का आधार ''कर्म'' है।

240. प्राचीन काल में वर्ण कैसे निर्धारित होता था?

उ. प्राचीन काल में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली थी। गुरुकुल की शिक्षा पूरी करने पर आचार्य ही शिष्य का वर्ण (शिष्य की योग्यता के अनुसार) निश्चित करता था।

241. वर्ण कितने हैं? कौन कौन से हैं?

उ. वर्ण चार हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र (सेवक)

242. ब्राह्मण के क्या कर्तव्य हैं?

उ. शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान लेना-देना, सदा धर्म और न्याय के मार्ग पर चलना-ये मुख्य कर्तव्य हैं।

243. क्या जाति-प्रथा से बने वर्तमान के ब्राह्मण यह कर्त्तव्य पूरे करते हैं?

उ. बिलकुल नहीं। अधिकतर वर्तमान ब्राह्मणों को वेद और दर्शन शास्त्र का ज्ञान नाम मात्र भी नहीं है।

244. क्षत्रिय के क्या कर्म हैं?

उ. न्याय से प्रजा की रक्षा करना, पक्षपात छोड़कर दुष्टों को दंड देना, शास्त्रों को पढ़ना और अत्याचार सहन ना करना

आदि क्षत्रिय के कर्म हैं।

245. वैश्य के क्या कर्म हैं?

उ. शास्त्रों को पढ़ना, व्यापार करना, खेती करना, विद्या, धर्म की वृद्धि और राष्ट्र के लिये दान देना।

246. शूद्र (सेवक) के क्या कर्म हैं?

उ. जो व्यक्ति पढ़ने-पढ़ाने, लिखने-लिखाने में असमर्थ होता था, वह समाज में सेवक का कार्य करता था। यही शूद्र का मुख्य कर्म है।

नोटः प्राचीन काल में समाज में सेवक को नीच या हीन भावना से नहीं देखा जाता था।

247. क्या जाति प्रथा वैदिक काल में थी?

उ. नहीं।

248-249. जाति प्रथा कब से प्रचलित हुई?

उ. यह महाभारत काल के काफी समय बाद प्रचलित हुई। ऐसी सम्भावना है।

250. जाति प्रथा की मुख्य हानि क्या है?

उ. यह सामाजिक उन्नति में बाधक है ।

251. मनुष्य की आयु शास्त्रों में कितनी मानी गई है?

उ. कम से कम 100 वर्ष मानी गई है।

252. इस उम्र को कितने भागों में बाँटा गया है?

उ. चार भागों में बाँटा गया है।

253. इन चार भागों को किस नाम से जाना जाता है?

उ. इन चार भागों को आश्रम कहते हैं।

254. इन चार आश्रमों के क्रमशः नाम बताइए?

1. ब्रह्मचर्य आश्रम (25 वर्ष तक)
2. गृहस्थ आश्रम (26–50 वर्ष तक)
3. वानप्रस्थ आश्रम (51–75 वर्ष तक)
4. सन्यास आश्रम (76–100 वर्ष तक)

255. इन चार आश्रमों में जीवन को बाँटने का क्या उद्देश्य है?

उ. मनुष्य जीवन को चार आश्रम में बाँटने का निम्न उद्देश्य है: मनुष्य अपने आप को हर एक आश्रम में ऊँचा उठाता जाय अर्थात् धीरे–धीरे सब प्रकार की उन्नति करता जाय।

योग सम्बन्धित शुद्ध (सामान्य) ज्ञान

256. योग किसे कहते हैं?

उ. चित्त की वृत्तियों के रोकने का नाम "योग" है?

257. क्या वर्तमान में स्वामी रामदेव या अन्य योगाचार्यों द्वारा सिखाए जाने वाले आसनों को योग अथवा पातंजलि योग कहना उचित है?

उ. यह उचित नहीं है। इनके द्वारा सिखाये जाने वाले आसन एवं प्राणायाम हठयोग की क्रियाएँ हैं जिनका पातंजलि ऋषि द्वारा लिखित " योगदर्शन "में किसी भी स्थान पर कोई भी वर्णन नहीं है।

258. क्या योगासनों को योग की संज्ञा देने की प्रथा को तुरंत रोकना चाहिये?

उ. यदि योगासनों को "पातंजलि योग" या " योग" की जगह किसी अन्य नाम से बुलाया जाय तो अच्छा होगा।

259. पातंजलि कृत" योगदर्शन" में बताए गये योगाभ्यास करने से क्या लाभ हैं?

उ. योगाभ्यास करने से लाभ –

– अविद्या का नाश होता है

– दिनचर्या वेदानुसार होती जाती है।

– ध्यान में मन लगता है।

– ईश्वर अनुभूति होती है

– ईश्वरीय आनंद की प्राप्ति होती है ।

– मनुष्य जीवन के मुख्य लक्ष्य "मोक्ष प्राप्ति" की ओर अग्रसर होना शुरू हो जाता है।

260. योग के कितने अंग हैं?

उ. योग के 8 अंग हैं।

261. योग (अष्टांग योग) के अंगों के नाम बताओ?

उ. यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

262. यम किसे कहते हैं?

उ. इंद्रियों को संयम में रखना (दुरुपयोग से रोकना) का नाम यम है।

263. यम कितने हैं?

उ. यम पाँच हैं –

1. अहिंसा : किसी को अन्याय–पूर्वक दुःख ना पहुँचाना।

2. सत्य : जो वस्तु जैसी है उसको वैसा ही मानना और बोलना

3. अस्तेय : बिना आज्ञा किसी दूसरे की वस्तु ना लेना और चोरी ना करना।

4. ब्रह्मचर्य : इंद्रियों को नियंत्रण में रखना व ईश्वर भक्ति

में मन लगाना।

5. अपरिग्रह : आवश्यकता से अधिक संग्रह ना करना और अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखना।

264. नियम किसे कहते हैं?

उ. व्यक्तिगत आत्मिक उन्नति हेतु पालनीय सिद्धांतों को नियम कहते हैं।

265. नियम कितने हैं?

उ. नियम भी पाँच हैं –

1. शौच/शुद्धि : शरीर को स्वच्छ, साफ रखना और अंत:करण (मन, बुद्धि, चित्त , अहंकार) को पवित्र बनाना।

2. सन्तोष : अपनी योग्यता, शक्ति, ज्ञान व साधनों का पूर्ण प्रयोग करने के बाद जो फल प्राप्त होता है, उससे सन्तुष्ट होना संतोष है।

3. तप : अपनी ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों का ठीक-ठीक उपयोग करना तप है।

4. स्वाध्याय : आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन, चिन्तन, मनन और ईश्वर के मुख्य नाम 'ओ३म्' का जप करना स्वाध्याय कहलाता है।

5. ईश्वर प्रणिधान : अपने सभी कार्य वेदानुसार, प्रभु की उपस्थिति मानकर करना ईश्वर प्रणिधान है।

266. आसन किसे कहते हैं?

उ. जिस मुद्रा में शरीर स्थिर हो जाये, उसे आसन कहते हैं।

नोट : आसन के स्थिर होने पर ही ध्यान में मन लगता है।

267. ध्यान करने के लिये योग दर्शन में कौन-कौन से आसन बताए गये हैं?

उ. निम्न चार आसन बताये हैं :

1. सुखासन 2. पद्मासन
3. सिद्धासन 4. स्वस्तिकासन

268. हठयोग के आसनों के उदाहरण बताइये?

उ. वज्रासन, मंडुकासन, धनुरासन, मकरासन आदि

269. हठ योग के आसनों के क्या लाभ हैं?

उ. इन आसनों को सही विधि के साथ करने से -
- शरीर का हर एक अंग सक्रिय व स्वस्थ्य रहता है ।
- कुछ आसन शारीरिक रोग निवारण में भी सहायक हैं ।

270. क्या हठयोग के आसन किसी गुरु से सीखने के बाद ही करने चाहिएँ?

उ. जी हाँ। नहीं तो हानि होने की संभावना रहती है और पूर्ण लाभ भी नहीं मिलता है।

271. प्राणायाम किसे कहते हैं?

उ. श्वास-प्रश्वास की गति को यथाशक्ति रोक देने की क्रिया को प्राणायाम कहते हैं।

नोट : प्राणायाम और आसन का पर्याप्त अभ्यास होने पर ही ध्यान में पूर्ण सफलता मिलती है।

272. प्राणायाम में होने वाली क्रियाओं के नाम बताओ?

उ. - पूरक - रेचक
- कुम्भक (बाह्य) - कुम्भक (आंतरिक)

273. योगदर्शन में वर्णित प्राणायाम के नाम बताओ?

उ. 1– बाह्य प्राणायाम
2– आभ्यंतर प्राणायाम
3– स्तम्भवृत्ति प्राणायाम
4– बाह्य आभ्यंतर विषयाक्षेपी प्राणायाम

नोट 1: इन्हें पहला, दूसरा, तीसरा और चौथा प्राणायाम भी कहते हैं।

नोट 2: ध्यान में सफलता के लिये, किसी एक आसन में बैठ कर, पहले तीन प्राणायाम प्रति दिन प्रातः काल में करने चाहिएँ।

274. श्वास लेने की चार विधियाँ बताइये?

उ. – दीर्घ श्वसन – मध्य श्वसन
– सूक्ष्म श्वसन – अति सूक्ष्म श्वसन

नोट : इन चारों श्वसन क्रियाओं का अभ्यास भी साधक को प्रति दिन (प्राणायाम से पहले) करना चाहिये।

275. हठयोग में प्राणायाम की क्रियाओं के नाम बताओ?

उ. – भस्त्रिका
– अनुलोम– विलोम
– कपालभाति आदि

276. इन क्रियाओं के करने के क्या लाभ हैं?

उ. ठीक विधि से करने पर, इनसे शारीरिक स्वास्थ्य में अनेक लाभ होते हैं।

277. प्रत्याहार किसे कहते हैं?

उ. इंद्रियों को संयम में रखना और मन को नियंत्रण में रखना प्रत्याहार कहलाता है।

278. धारणा किसे कहते हैं?

उ. मन (चित्त) को किसी एक स्थान विशेष में स्थिर करना धारणा कहलाता है। धारणा से ध्यान में परिपक्वता आती है।

279(क) ध्यान किसे कहते हैं?

उ. आत्मा और मन को ईश्वर में लगाकर–ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का चिंतन मनन करने की क्रिया को ध्यान कहते हैं।

279(ख) ध्यान करने का स्थान कैसा होना चाहिये?

उ. यह स्वच्छ साफ, एकान्त, शोर–रहित व हवादार होना चाहिये।

279(ग) ध्यान कब कब करना चाहिये?

उ. ध्यान प्रातः सायं नियम से–प्रति दिन दो बार करना चाहिये (कम से कम 30 मिनट से लेकर 60 मिनट तक)

279 (घ) ध्यान में किसका चिंतन करते हैं?

उ. (1) ध्यान में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का चिंतन करते हैं और

(2) ईश्वर को उसके उपकारों का धन्यवाद देते हैं।

280. क्या ध्यान में देवी–देवताओं का चिंतन करना सही है?

उ. बिलकुल नहीं।

नोटः ध्यान में देवी देवताओं का चिंतन करना वेद और योग दर्शन सम्मत नहीं है ।

281. क्या ध्यान में पुरुषोत्तम राम या योगीराज कृष्ण या किसी अन्य गुरु का चिंतन करना उचित है?

उ. नहीं। ऐसा करना वेद सम्मत नहीं हैं और ना ही इस प्रकार के चिंतन से कोई लाभ होता है।

282. क्या ''ध्यान'' का अर्थ मस्तिष्क को विचार शून्य करना है?

उ. नहीं।

नोट : (1) केवल श्वास प्रश्वास पर ही मन को केंद्रित करना भी ध्यान के अंतर्गत नहीं आता है। (2) आजकल कुछ गुरु/योगाचार्य इसी को ध्यान की संज्ञा दे रहे हैं। ऐसी प्रक्रिया का योगदर्शन में वर्णन नहीं है।

283. क्या ध्यान में पूर्ण सफलता के लिये योगदर्शन में वर्णित प्राणायाम का प्रतिदिन अभ्यास करना आवश्यक है?

उ. हाँ। यह ध्यान में सहायक है।

284. क्या ध्यान में या वैदिक सन्ध्या करते समय प्राण-साधना का प्रयोग करना चाहिये?

उ. हाँ। इसके प्रयोग से वैदिक संध्या और ध्यान में मन पूर्ण रूप से लग जाता है और शरीर पूर्ण रूप से स्थिर हो जाता है।

नोट : हृदय रोगी और उच्च ताप के रोगी प्राण साधना को डॉक्टर/वैध की सलाह से ही करें और अपने स्वास्थ्य की स्थिति को भी ध्यान में रखें।

285. ध्यान करने के लिये मन/चित्त की स्थिति कैसी होनी चाहिये?

उ. मन प्रसन्न व राग द्वेष, लोभ, अहंकार आदि से रहित होना चाहिये।

नोट : यम नियम का पालन करने वाले साधक को ध्यान में सफलता आसानी से मिल जाती है।

286. मन और चित्त की चंचलता पर विजय पाने के उपाय बताएँ?

उ. दिनचर्या में यम नियम का पालन, प्रतिदिन प्राणायाम, जप और ध्यान का अभ्यास ही एक मात्र उपाय है।

मन पर विजय पाने के लिए पढ़ें : वैदिक विचार सं0-102-109, वैदिक विचार संग्रह-भाग-1

287. अन्य मत, पंथ, समुदायों के गुरु उपरोक्त बात क्यों नहीं बताते हैं?

उ. – योग दर्शन में वर्णित यम नियम का पालन करना एक तप है।

– वे स्वयं यम नियम के पालन करने में जागरुक प्रतीत नहीं होते हैं।

– अधिकतर विद्वान भी आजकल यम नियम का पालन नहीं करते हैं।

– आजकल भोगवाद के कारण, अधिकतर मनुष्य यम नियम का पालन नहीं कर रहे हैं।

– कुछ लोग (अपने स्वार्थ के लिये-पैसा कमाने के लिये) ईश्वर को छोड़ कर वेद विरुद्ध अन्य देवी देवताओं की उपासना (मूर्ति पूजा) में स्वयं लगे हुए हैं एवम् औरों को भी इसके लिये प्रेरित करते हैं।

– उनको योग दर्शन का या तो ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है या इसका स्वयं अभ्यास नहीं करते अथवा अपने स्वार्थ हेतु यह प्रक्रिया साधकों को नहीं बताते हैं।

– भोगवाद के कारण अधिकतर साधकों में भी यम नियम के प्रति पूर्ण रुचि नहीं है।

288. क्या वैदिक रीति को छोड़ कर ध्यान की अन्य विधियाँ,

जो समाज में प्रचलित हैं – वे सही हैं?

उ. नहीं।

289. ध्यान की उच्चतम स्थिति क्या है?

उ. ध्यान काल में –

– मन की चंचलता पूर्णतः समाप्त हो जाती है।

– शरीर भी स्थिर हो जाता है।

– चित्त भी पूर्णतः स्थिर हो जाता है।

– ईश्वरीय आनंद की अनुभूति होती है।

290. ध्यान में सफलता न मिलने के तीन मुख्य कारण क्या हैं?

उ. 1. अविद्या

2. यम- नियम का पालन ना करना।

3. नियमित प्रार्थना–उपासना, जप, ध्यान का अभ्यास ना करना।

नोट : (i) जो साधक यम नियम का जीवन में पालन नहीं करते हैं वे असफल होने की शिकायत करते हैं, (ii)जिनको आध्यात्मिक अज्ञानता है या वैदिक विधि नहीं आती, वे साधक भी ध्यान में असफलता की शिकायत करते हैं और (iii) जो ना तो यम नियम का पालन करना चाहते हैं और ना ही वैदिक धर्म को अपनाना चाहते हैं, वे भी ऐसी शिकायत करते रहते हैं।

291. ध्यान करने के मुख्य लाभ कौन कौन से हैं?

उ. मुख्य लाभ निम्न हैं : 1. बुद्धि की एकाग्रता बढ़ती है, 2. स्मरण शक्ति बनी रहती है, 3. नाड़ीतंत्र व्यवस्थित रहता है। 4. टेन्शन/डिप्रेशन/हृदय रोग आदि कम होते हैं, 5. मानसिक रोग (काम, क्रोध, लोभ,मोह, द्वेष आदि) से छुटकारा मिलता है, 6. मनुष्य पाप कर्म करने से बचता है, 7. मन प्रसन्न व

शांत रहता है, 8. ईश्वरीय आनंद की अनुभूति होती है।

292. ध्यान की सरल विधियाँ बताइये?

उ. ध्यान व ध्यान की सरल विधियों को जानने के लिये पढ़ें: वैदिक विचार संग्रह-3 (वैदिक विचार सं0-410-430)

293. ध्यान में प्रात: सायं कितना समय बैठना चाहिये?

उ. सामान्यत: 1 घंटा प्रात: काल व 1 घंटा सायं काल अथवा कम से कम आधा घंटा प्रात: सायं।

294. क्या ध्यान में बैठने से पहले जप करना चाहिये?

उ.(क) ध्यान में बैठने से पहले - ओ३म् का जप 10 से 15 मिनट और गायत्री मंत्र का जप भी 10-15 मिनट रोज करना चाहिये।

(ख) नये साधकों को सीधा ध्यान का अभ्यास ना करके प्रथम तीन-चार चार महीने तक जप का अभ्यास करना चाहिये। उसके बाद ही ध्यान विधि से ध्यान का अभ्यास शुरू करें।

295(क) ध्यान से पहले जप करने से क्या लाभ है?

उ. जप करने से ध्यान प्रक्रिया में सहायता मिलती है। मन ईश्वर में लग जाता है और भटकता नहीं है।

295 (ख) समाधि के बारे में कुछ बताइए।

उ. ध्यान का इतना स्थिर और एकस्थ हो जाना कि ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी का लेशमात्र भी भान न रहे, यहाँ तक कि ध्यानस्थ को अपने स्वरूप (अस्तित्व) का भी भान न रहे, समाधि है। निरंतर व नियमित ध्यान में बैठने से समाधि की प्राप्ति होती है।

योग सम्बन्धित गूढ़ ज्ञान

प्र. 296. योग किसे कहते हैं?

उ. 'योग' शब्द का अर्थ समाधि अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध है।

मन की समस्त अनावश्यक विचारों-चिन्ता, क्रोध, तनाव, खिन्नता, चंचलता, घृणा, अभिमान आदि को रोककर मन को अभीष्ट ध्येय आत्मा तथा प्राकृतिक पदार्थों में नियुक्त कर उनके यथार्थ स्वरूप को जानना तथा मन की सात्त्विक वृत्तियों का भी निरोध कर ईश्वर का साक्षात्कार करना 'योग' है।

प्र.297. आत्मा परमात्मा से कैसे मिलता है?

उ. आत्मा परमात्मा से चित्त की वृत्तियों के निरोध द्वारा मिलता है।

प्र.298. योग साधना का उपाय क्या है?

उ. यम-नियम आदि आठ अंगों का अनुष्ठान, विवेकख्याति, वैराग्य, अभ्यास और उच्च स्तरीय ईश्वर प्रणिधान-योग साधना के उपाय हैं।

प्र.299. योग दर्शन के बारे में विस्तार से समझाइये?

उ. योगदर्शन चार भागों में विभाजित है। दु:ख और सुख का कारण, सुख और सुख का कारण।

जो व्यक्ति इन चारों को अच्छी तरह जान लेता है और तदनुसार अनुष्ठान करता है, वह कृतकृत्य हो जाता है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 300. योगदर्शन में किन 4 विषयों का प्रतिपादन किया गया है?

उ. योगदर्शन में निम्न चार विषयों के बारे में अच्छी तरह से समझाया गया है–

(1) **हेय** :– योगदर्शन में भविष्य में आने वाले दु:ख को ही हेय–त्याज्य कहा गया है अर्थात् जो दु:ख अभी प्राप्त नहीं हुआ है उसे ही दूर किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में–जो दु:ख भूतकाल में भोग लिया गया है वह छोड़ने योग्य नहीं है, क्योंकि वह अब भोक्ता के समीप नहीं है। जो दु:ख वर्तमान क्षण में भोगा जा रहा है,वह आगामी क्षण में नहीं रहेगा, उसका भी त्याग नहीं हो सकता है। अतएव जो भविष्यकालिक दु:ख है, वही छोड़ने योग्य (त्याज्य) है। योगदर्शन में इसी का परिभाषिक नाम ''हेय'' है।

(2) **हेय हेतु** :– हेय हेतु का अर्थ है–''दु:ख का कारण''

जीवात्मा का बुद्धि एवं समस्त प्राकृतिक पदार्थों के साथ जो अज्ञानपूर्वक सम्बन्ध है, वह हेयहेतु कहलाता है। इसके अतिरिक्त अविद्या, अधर्म, कुसंस्कार आदि भी दु:ख के कारण हैं।

(3) **हान** :– हान का अर्थ है 'मोक्ष'। अविद्या के अभाव (समाप्त) हो जाने पर बुद्धि और जीवात्मा का अज्ञानजनित संयोग का अभाव हो जाता है। उससे जीवात्मा के बन्धन का नितान्त विनाश हो जाता है और जीवात्मा को प्राप्त करने योग्य दु:ख रहित नित्य सुख और ईश्वर की प्राप्ति होती है। यही ''हान'' का स्वरूप है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(4) **हानोपाय :** इसका अर्थ है "मोक्ष प्राप्ति का उपाय"। स्थिर (दृढ़) विवेक ख्याति मोक्ष का उपाय है। इसके साथ-साथ विद्या, धर्माचरण, शुद्ध ज्ञान, शुद्ध (निष्काम) कर्म तथा शुद्ध उपासना आदि भी मोक्ष के उपाय हैं।

प्र. 301. चित्त की वृत्तियों से क्या तात्पर्य है?

उ. इसका अर्थ है चित्त में उठने वाली अनगिनत चिन्तन-धारायें, विचार-तरंगे, धारणायें। दूसरे शब्दों में चित्त और इन्द्रियों के माध्यम से जिन विषयों का ज्ञान जीवात्मा प्राप्त करता है, उस ज्ञान का नाम वृत्ति है।

प्र. 302. "चित्तवृत्ति निरोध" के बारे में बतायें।

उ. चित्तवृत्ति निरोध का अर्थ है- चित्त की वृत्तियों की गति को रोकना, नियन्त्रण में रखना। योग का लक्ष्य चित्त की वृत्तियों का उन्मूलन करना नहीं है। उनका निरोध (नियमन तथा नियंत्रण) करना है। निरोध से गति का ह्रास वा मन्दीकरण नहीं होता है, अपितु गति का पोषण और तीव्रीकरण होता है। चित्त की वृत्तियों का निरोध इसलिए नहीं किया जाता है कि योगी की वृत्तियाँ अशक्त और मृतप्राय: हो जायें, बल्कि इसलिए किया जाता है कि निरुद्ध, नियमित और नियंत्रित होकर वे सशक्त और व्यापनशील हो जायें।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 303. चित्त की वृत्तियों का निरोध क्यों करना चाहिए?

उ. चित्त की वृत्तियों का संयमन करके मनुष्य न केवल ब्रह्म से अपितु किसी भी तत्त्व, सत्य, ज्ञान, विज्ञान, लोक व पदार्थ से युक्त होकर उसका साक्षात्कार कर सकता है।

इसके विपरीत चित्त की वृत्तियों के अनिरुद्ध, अनियंत्रित और अव्यवस्थित रूप से गति करते रहने पर आत्मा आत्म-अवस्थित न रहकर आत्म-विस्मृत रहता है और परिणामस्वरूप वृत्ति-भ्रान्त रहता है। वृत्ति-भ्रान्त रहने के कारण आत्मा न अपने आपको पहचान पाता है, न ब्रह्म को जान पाता है, न तत्त्व, सत्य, विज्ञान आदि का निर्भ्रान्त ज्ञान कर पाता है।

प्र. 304. चित्त की वृत्तियाँ कितने प्रकार की होती हैं?

उ. चित्त की वृत्तियाँ पांच प्रकार की होती हैं -

(1) **प्रमाणवृत्ति** :- ये निम्न तीन प्रकार की होती हैं -

(i) **प्रत्यक्ष प्रमाण** :- इसका प्रयोग उस ज्ञान के लिए होता है जिसकी प्राप्ति ज्ञानेन्द्रियों (नेत्र, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वचा) से की जाती है।

(ii) **अनुमान प्रमाण** - जो प्रत्यक्ष न हो लेकिन जो प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर अनुमान से जाना जाय, वह अनुमान प्रमाण है।

(iii) **आगम प्रमाण** - वेद, शास्त्र तथा आप्त पुरुषों के वचन आगम प्रमाण की कोटि में आते हैं।

नोट :- (क) जिससे प्रत्येक विषय का उत्तम, ठीक-ठीक यथावत् सही ज्ञान हो, उसे प्रमाण कहते हैं।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(ख) प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम – इन तीन में से किसी भी विषय या वस्तु का ''ज्ञान'' प्राप्त करने में सहायता मिलती है। परन्तु ज्ञान सम्पादन के इन प्रमाणों में परिहित होकर मनुष्य साधना द्वारा किसी भी विषय की अनुभूति नहीं कर पाता है। प्रमाणवादिता साधनाकृत अनुभूति में बाधक होती है।

(ग) ज्ञानेन्द्रियाँ भौतिक हैं। उनके द्वारा सम्पादित ज्ञान ''निभ्रन्ति ज्ञान'' कदापि नहीं हो सकता। इनके द्वारा अभौतिक तत्त्वों का (ईश्वर, आत्मा) का निभ्रान्त ज्ञान सम्पादित किया ही नहीं जा सकता।

(घ) इसी प्रकार अन्तःकरण (मन, बुद्धि, मेधा, चित्त) के द्वारा भी अभौतिक तत्त्वों का निर्भ्रान्त ज्ञान सम्पादित नहीं हो सकता।

(ङ) अनुमान प्रमाण सर्वथा प्रत्यक्ष के पीछे चलता है। जब प्रत्यक्ष प्रमाण स्वयं तत्त्व ज्ञान के क्षेत्र में नितान्त पंगु है तब अनुमान प्रमाण तत्त्व ज्ञान के क्षेत्र में कोई सहायता कैसे कर सकता है।

(च) वेद, शास्त्रों तथा आप्त विद्वानों के वचनों का अर्थ अथवा आशय प्रायः ज्ञानेन्द्रियों तथा अन्तःकरण के ज्ञान का अनुगामी होता है। इस प्रकार से सम्पादित किया ज्ञान भी निर्भ्रान्त नहीं हो सकता है।

(छ) जब योगी ज्ञानेन्द्रियों तथा अन्तःकरण से पूरे आत्मक्षेत्र में प्रविष्ट होकर आत्म–अवस्थित होता है, इन तीनों प्रमाणवृत्तियों का विरोध करता है, तब वह आत्मना समाहित होकर प्रत्येक तत्त्व व सत्य का दर्शन करता है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(2) **विपर्यय वृत्ति :-** विपर्य का अर्थ है उल्टा, मिथ्या, झूठा, गलत। जिसका जो रूप है, वह न पहिचान कर, कुछ का कुछ समझना–ऐसे मिथ्या ज्ञान का नाम विपर्यय है। विपर्यय वृत्ति सभी भ्रान्तियों तथा भ्रममूलक समस्त मान्यताओं व धारणाओं का मूल है।

भ्रम भ्रान्तियों में फंसे हुए व्यक्ति की चित्त–वृत्तियाँ अतिशय अव्यवस्थित रहती हैं। वृत्तियों के अव्यवस्थित रहते हुए मनुष्य अनात्मसमाहित व अतद्रूप रहता है और इसीलिए वह किसी भी तत्त्व को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं देख पाता है।

जब योगी चित्तवृत्तियों के निरोध से तद्रूपता को प्राप्त करता है, तब ही वह प्रत्येक विषय, वस्तु, क्षेत्र और पार्श्व में तत्त्व ज्ञान को प्राप्त करता है।

(3) **विकल्पवृत्ति :-** जो सत्तारूप से कोई वस्तु न हो, किन्तु शब्द रूप में, जिसके विषय में काल्पनिक विकल्प वा धारणा बनी हो, उसे विकल्पवृत्ति कहते हैं। उदाहरण : शान्ति, आनन्द, मोक्ष, प्रसन्नता–ये कोई वस्तु नहीं है। ये सब मानव की आन्तरिक स्थितियों के परिणाममात्र हैं। फिर भी इन शब्दों के ज्ञान के पीछे वस्तुवत इनका काल्पनिक विकल्प है।

विकल्प से वृत्तियाँ बहुत अस्त–व्यस्त और बिखरी रहती हैं। विकल्प के निरोधान से, लोप से, जब चित्त की वृत्तियाँ स्थिर रहती हैं तब ही उनका निरोध होता है और उनके निरुद्ध होने पर ही द्रष्टा आत्मा के स्वरूप में अवस्थित रहती है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(4) **निद्रावृत्ति :** निद्रा से तात्पर्य नींद से नहीं है–स्वप्नवृत्ति से है। निद्रा वृत्ति नहीं, अनिवार्य आवश्यकता है।

स्वप्नावस्था में मनुष्य वस्तुओं के अभाव में वस्तुओं का भोग व सेवन करता है। जागृति में मनुष्य वस्तुओं के भाव में वस्तुओं का भोग व सेवन करता है।

जागृति में किये गये सब कार्य भावात्मक होते हैं। स्वप्न में किये सब कार्य अभावात्मक होते हैं।

प्रत्यक्षतः निद्रावृत्ति से चित्त की वृत्तियाँ सर्वथा अनिरुद्ध रहती हैं और परिणामस्वरूप द्रष्टा आत्मा की स्वरूप में अवस्थित नहीं हो पाती है।

(5) **स्मृतिवृत्ति** – सुने, देखे और भोगे हुए विषय का विस्मृत न होना स्मृति वृत्ति है।

इसकी तीन अवस्थाएँ प्रसिद्ध हैं।

(क) **जागृति :** इसमें मनुष्य जो कुछ देखता, सुनता और भोगता है, वह सब भावात्मक होता है।

(ख) **स्वप्न :** इसमें मनुष्य जो कुछ देखता, सुनता, भोगता है, वह सब अभावात्मक होता है।

(ग) **सुषुप्ति :** इसमें मनुष्य की बुद्धि, चित्त, आत्मा तथा समस्त इन्द्रियाँ सुषुप्त (निष्क्रिय अवस्था, गहरी नींद में सोना) हो जाती हैं। अतः सुषुप्ति की अवस्था विस्मृतावस्था व शून्यावस्था है।

उपरोक्त पहली दो अवस्थाओं में मनुष्य को स्मृति केवल विशेष घटनाओं की ही रहती है, सबकी नहीं। स्मृति का सम्बन्ध न केवल जागृतावस्था से है अपितु स्वप्नावस्था से भी है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

स्मृतियों का कोष मनुष्य का मस्तिष्क है। जागृति तथा स्वप्न में मनुष्य सायास व अनायास जो कुछ देखता, सुनता व करता है, उसके स्मृतिकण सदा इस कोष में विद्यमान रहते हैं। ये स्मृतिकण स्थायी होते हैं। देहावसान पर सारे स्मृतिकण और स्मृतियाँ शरीर में ही रह जाते हैं।

प्रत्यक्षतः स्वप्न-वृत्तियों तथा स्मृति-वृत्तियों के अनिरुद्ध रहते हुए द्रष्टा आत्मा के स्वरूप में अवस्थित नहीं हो सकती।

प्र. 305. ''वृत्तियाँ'' को उदाहरण देकर समझाइये?

उ. ज्ञान की दृष्टि से वृत्तियाँ पांच प्रकार की हैं। योग दर्शन इन पांच प्रकार की वृत्तियों को ही मानता है। न्यूनाधिक को नहीं। इन पांच वृत्तियों के नाम और लक्षणों को अच्छे प्रकार से जानकर साधक इनको रोकने में समर्थ हो जाता है। आइये! इनको उदाहरण से समझते हैं।

(1) प्रमाणवृत्तिः जिस साधन के द्वारा पदार्थ का स्वरूप ठीक-ठीक परिज्ञात होता है, वह प्रमाण कहलाता है। प्रमाणवृत्ति के तीन उपभेद हैं :-

(क) प्रत्यक्ष प्रमाण-उदाहरण : एक व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन खा कर सुख का अनुभव करता है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण वृत्ति का अक्लिष्ट स्वरूप है। एक व्यक्ति कड़वी कुनीन की गोलियाँ खाकर दु:ख का अनुभव करता है। यह प्रत्यक्ष प्रमाणवृत्ति का क्लिष्ट रूप है।

(ख) अनुमान प्रमाण-उदाहरण : सामने एक व्यक्ति हमें दिख रहा है जो हमें कुछ पुरस्कार देने वाला है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

ऐसा अनुमान करके सुख का अनुभव होता है। यह अक्लिष्ट अनुमान प्रमाणवृत्ति है। इसी प्रकार से एक कुत्ता हमें काटने के लिए तीव्र गति से दौड़ता हुआ आ रहा है, ऐसा अनुमान करके दु:ख का अनुभव होता है। यह क्लिष्ट अनुमान प्रमाण वृत्ति है।

(ग) शब्द प्रमाण–उदाहरण :

वेद में ऐसा पढ़कर हमें सुख हुआ कि ईश्वर का प्रत्यक्ष करके व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त हो जाता है। यह शब्द प्रमाण वृत्ति का ''अक्लिष्ट स्वरूप'' है। और वेद में किसी को यह पढ़कर दु:ख हुआ कि–जो लोग पाप करते हैं, उन्हें पशु–पक्षी आदि योनियों में अपने पापों का दंड दु:ख के रूप में भोगना पड़ता है। यह शब्द प्रमाण वृत्ति का क्लिष्ट स्वरूप है।

(2) विपर्यय वृत्ति (मिथ्या ज्ञान–अविद्या)

एक व्यक्ति रस्सी ढूँढ़ रहा हो, उसने कुछ हल्के प्रकाश में साँप को रस्8सी मान लिया और प्रसन्न हुआ कि रस्सी मिल गई। यह अक्लिष्ट विपर्यय वृत्ति है। और एक व्यक्ति ने हल्के प्रकाश में रस्सी को साँप समझ लिया। उससे वह भयभीत और दु:खी हो गया। यह क्लिष्ट विपर्यय वृत्ति है।

विपर्यय का दूसरा नाम अविद्या है। अविद्या के चार क्षेत्र समझने चाहिए–(1) अनित्य पदार्थों को नित्य – नित्य पदार्थों को अनित्य मानना, (2) अशुद्ध को शुद्ध – शुद्ध को अशुद्ध मानना,

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(3) दु:ख को सुख–सुख को दु:ख मानना और (4) अनात्मा को आत्मा–आत्मा को अनात्मा समझना–अविद्या है।

(3) विकल्प–वृत्ति–उदाहरण: किसी ने सुना कि आज मुम्बई से एक बन्ध्या का पुत्र आयेगा और हमें अच्छी–अच्छी मिठाई खिलाएगा। ऐसा सुनकर वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ। यह अक्लिष्ट विकल्पवृत्ति है। और किसी ने ऐसा सुनकर दु:ख का अनुभव किया कि–आज सायंकाल एक बन्ध्या का पुत्र हमें बहुत पीटेगा। यह क्लिष्ट विकल्प वृत्ति है।

नोट :– कभी–कभी योगाभ्यासी यह मान लेता है कि ईश्वर तो निराकार है, उसका ध्यान नहीं किया जा सकता। इसलिए उसके आनन्द, ज्ञानादि गुणों का ही ध्यान करना ठीक है। ऐसी वृत्ति ईश्वर और उसके आनन्द आदि गुणों को स्वतंत्र एवं पृथक्–पृथक् मानने से होती है।

यह आनन्द, ज्ञानादि गुण ईश्वर का स्वरूप ही हैं। उससे भिन्न पदार्थ नहीं। इनको पृथक्–पृथक् मानने से विकल्प वृत्ति होती है। इस वृत्ति के स्वरूप को यथावत् न जानने से योगाभ्यासी ईश्वर साक्षात्कार तक नहीं पहुँच पाता। यह योगाभ्यासी की हानि होती है।

(4) निद्रा–उदाहरण : जब अच्छी सुखदायक (सात्विक) नींद आती है तो वह अक्लिष्ट निद्रावृत्ति कहलाती है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

और जब अच्छी निद्रा नहीं आती, तमोगुण तथा अन्य अनेक प्रतिकूलताओं (गर्मी, मच्छर काटने आदि) के कारण दु:खदायक निद्रा आती है तो वह क्लिष्ट निद्रावृत्ति कहलाती है।

जब जाग्रत और स्वप्नावस्था का व्यापार बन्द हो जाता है, वह निद्रावस्था है। निद्रा शरीर को स्वस्थ रखने के लिए (आहार व ब्रह्मचर्य के साथ-साथ) एक आवश्यक साधन है किन्तु साधना के समय निद्रा को रोकना चाहिए। साधना के समय निद्रा बाधक होती है। उसका अवरोध करना अनिवार्य है।

साधना के समय निद्रा आने के कुछ कारण निम्न हैं :

(1) रात्रि में निद्रा की पूर्ति न होना (2) पेट की शुद्धि न होना (3) शारीरिक श्रम या व्यायाम अपनी सामर्थ्य से अधिक करना या व्यायाम को छोड़ देना (4) भोजन का प्रतिकूल होना या मात्रा से अधिक होना, गरिष्ठ होना (5) मादक पदार्थों का सेवन करना (6) शरीर में ज्वर आदि रोगों का होना (7) शरीर में निर्बलता का होना (8) आसन को ठीक प्रकार से न लगाना (9) उपासना से पूर्व शौच-स्नान न करना (10) शीतकाल में वस्त्रों को आवश्यकता से अधिक पहनना (11) अध्ययन आदि में मानसिक परिश्रम अधिक करना

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(12) सन्ध्या वा जप मन्त्रों/वाक्यों के अर्थों को न जानना अथवा उन पर चिंतन न करना (13) प्राणायाम को उचित मात्रा में न करना (14) ईश्वर के विषय में पर्याप्त ज्ञान, श्रद्धा, रूचि का न होना (15) योगाभ्यास के लाभ को व उसके न करने से होने वाली हानियों को न समझना (16) आलसी व्यक्तियों का संग करना, इत्यादि।

(5) स्मृति वृत्ति-उदाहरण :

एक व्यक्ति को पाँच वर्ष पहले हजारों लोगों ने सम्मानित किया था। इसकी स्मृति करके उसको सुख का अनुभव हुआ। यह अक्लिष्ट स्मृति वृत्ति है। और एक व्यक्ति को याद आया कि अमुक व्यक्ति ने 3 साल पहले उसे पीटा था। यह यादकर उसे दु:ख हुआ। यह क्लिष्ट स्मृति वृत्ति है।

आत्मा द्वारा अनुभव किये विषयों को पुनः स्मरण कर लेना स्मृति वृत्ति कहलाती है।

जो स्मृतियाँ विवेक, वैराग्य और समाधि की ओर ले जाने वाली है, व्यवहारकाल में उनका अवरोध नहीं करना चाहिए। उपासना काल में कभी-कभी उनका सहयोग ले सकते हैं।

नोट :-

(क) चित्त की वृत्तियाँ आत्मा स्वयं उठाता है, चित्त नहीं।

(ख) पाँच वृत्तियों के नाम व लक्षण जानकर साधक इनको रोकने में समर्थ हो सकता है।

(ग) क्लिष्ट वृत्तियों का त्याग करके और अक्लिष्ट वृत्तियों के उचित प्रयोग से योगमार्ग पर चलने में सहायता मिलती है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(घ) चित्त को एकाग्र करते समय किसी एक प्रमाण का प्रयोग किया जाता है और अन्य प्रमाणों का अवरोध किया जाता है।

(ङ) ध्यान काल में ओ३म् आदि का जप निषिद्ध नहीं है। प्रणव जप से योगी का चित्त एकाग्र होता है।

प्र. 306. चित्तवृत्तियों को रोकने के क्या साधन हैं?

उ. अभ्यास, विवेक और वैराग्य – इन चित्तवृत्तियों को रोकने के साधन हैं। इन तीनों के द्वारा वृत्तिनिरोध होता है, इनके बिना नहीं।

प्र. 307. अन्तःकरण की कार्यप्रणाली समझाइये?

उ. मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के समूह को अन्तःकरण कहते हैं।

''कर्म रहस्य'' पुस्तक के लेखक महात्मा नारायण स्वामी (संस्थापक:आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार) के अनुसार अन्तःकरण की कार्य प्रणाली इस प्रकार है :

(1) मन:

मन का काम इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करना और कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करना है। मन का स्थान हृदयाकाश है परन्तु ज्ञानेन्द्रियों का स्थान, जिनके द्वारा मन ज्ञान प्राप्त करता है, वह मस्तिष्क है।

इन्द्रियों से काम लेने के अलावा, मन का दूसरा काम, अपने भीतर संकल्प और विकल्प करना है। जाग्रत और स्वप्न–दोनों अवस्थाओं से मन का सम्बन्ध है। सुषुप्ति (गाढ़ निद्रा) में मन बेकार सा रहता है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(2) बुद्धि :

बुद्धि की दो तह हैं अर्थात् दो भाग हैं –

(क) तार्किक बुद्धि : इसका काम तर्क करना है अर्थात् तर्क से सत्यासत्य का विवेक करना

(ख) मेधावी बुद्धि : इसका कार्य तर्क द्वारा निश्चित सत्य पर श्रद्धा या विश्वास उत्पन्न कर देना है। बुद्धि का स्थान भी मस्तिष्क है।

(3) चित्त : चित्त के भी दो भाग हैं। प्रथम भाग का काम उद्वेग पैदा करना है। दूसरा भाग स्मृति, वासना और संस्कार का स्थान है।

(क) स्मृति : शिक्षा, उपदेश और अध्ययन आदि के द्वारा मनुष्य जो ज्ञान प्राप्त किया करता है, वह चित्त के भण्डार में, स्मृति के रूप में जमा हो जाया करता है। उसी एकत्रित ज्ञान का नाम स्मृति–भण्डार है।

(ख) वासना : कर्म करने से अभ्यास का एक अंश बना रहता है, उसी अंश का नाम वासना हुआ करता है वासना का काम यह है कि जिस प्रकार के कर्म से वह बनी है, उसी के करने की भीतर से प्रेरणा दिया करती है।

(ग) संस्कार : मनुष्य के चित्त पर, उन समस्त घटनाओं का, जो उससे या उसके सम्मुख घटित हुईं हैं, प्रभाव पड़ा करता है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

इसी को चित्त पर छाप लगना भी कहते हैं। इसी प्रभाव या छाप का नाम संस्कार है।

(4) **अहंकार :** अहंकार से मनुष्य के भीतर ममता अर्थात् मेरे और तेरे पन का भाव पैदा हुआ करता है।

यह अन्तःकरण सूक्ष्म शरीर का भाग है। सदैव आत्मा के साथ बना रहता है। मोक्ष प्राप्त होने पर यह आत्मा से सूक्ष्म शरीर के साथ ही छूट जाता है।

प्र. 308. मनुष्य के कर्म करने का क्या रहस्य है?

मनुष्य के कर्म करने की इच्छा करने वाले पदार्थ, महात्मा नारायण स्वामी के अनुसार तीन हैं। इनका विवरण "कर्म रहस्य" पुस्तक में निम्न है –

(क) जन्म सिद्ध प्रवृत्ति:

साधारणतय: चित्त में इस जन्म व अनेक पिछले जन्मों की स्मृति, वासना और संस्कार जमा रहते हैं और ये जैसे होते हैं वैसे ही मनुष्य की प्रवृत्ति बना दिया करते हैं। इसे जन्म सिद्ध प्रवृत्ति भी कहते हैं। यह जन्म के साथ मनुष्य में आया करती है। उदाहरण : एक बालक की रूचि पढ़ने में अधिक है, दूसरे की नहीं। एक की रूचि व्यापार में, दूसरे की कला–कौशल में और तीसरे की कृषि में। यह सब चमत्कार जन्म सिद्ध प्रवृत्ति का ही है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(2) संगति :

मनुष्य जैसी संगति में रहता है, उसका, उस पर, उसके विचारों पर, कुछ न कुछ प्रभाव पड़ा ही करता ही है। अच्छी संगति (सत्संग) का अच्छा और बुरी संगति (कुसंग) का बुरा प्रभाव। यह दूसरी वस्तु है जिसका प्रभाव उसके इच्छा निर्माण पर पड़ता है।

(3) स्वतंत्र इच्छा :

यह प्रत्येक मनुष्य में हुआ करती है। इसी के कारण मनुष्य किसी काम के करने या न करने का निर्णय लिया करता है।

उपरोक्त तीनों का प्रभाव यदि एक दूसरे के अनुकूल होता है तो उससे मनुष्य की बलवती स्वतन्त्र इच्छा बन जाया करती है और वह उस इच्छा को शीघ्रता से काम में ले आया करता है। यदि इनका प्रभाव एक दूसरे के विरुद्ध है तो जिसकी अधिकता होती है, उसमें से, न्यूनताओं को निकालने के बाद, अधिकता का जितना अंश बाकी रहता है, उसी के अनुकूल उसकी काम करने की इच्छा बन जाती है।

यदि मनुष्य की प्रवृत्ति और संगति का योग उसकी स्वतन्त्र इच्छा के विरुद्ध है तो उसकी स्वतन्त्र इच्छा दब जायेगी और उसके विरुद्ध मनुष्य कर्म कर डालेगा। यदि स्वतन्त्र इच्छा अन्य दोनों के योग से बलवती है तो वह अपनी इच्छा के अनुकूल काम कर लेगा और अन्यों को दब जाना पड़ेगा।

साभार : पु. ''कर्म रहस्य'' ले0 महात्मा नारायण स्वामी

वेदान्त दर्शन में भी कहा गया है कि मनुष्य–ऐसा नहीं है कि सदैव अपने अनुकुल ही काम करे बल्कि अपने प्रतिकूल भी काम कर लिया करता है। (वेदान्त दर्शन – 2/3/37)

इच्छा न होने पर भी, प्रतिकूल कार्य, प्रवृत्ति और संगति के विरुद्ध होने ही से कर लिया जाया करता है।

ऋषि दयानन्द ने जीव को, कर्म करने में स्वतन्त्र मानते हुए भी प्रवृत्ति आदि की प्रतिकूलता से किंचित परतन्त्र भी स्वीकार किया है परन्तु यह परतन्त्रता जीव की, पिछले जन्मों में किये गये कार्यों द्वारा अपनी ही पैदा की हुई होती है जो कि परतन्त्रता का कारण बनी।

प्र. 309. अभ्यास के बारे में बतायें?

उ. वृत्तियों को रोकने और चित्त की एकाग्रता को सिद्ध करने के लिए मन, वाणी और शरीर से जो प्रयत्न किया जाता है उसको अभ्यास कहते हैं। यह अभ्यास व्यवहार–काल में और उपासनाकाल में समान रूप से आवश्यक है। व्यक्ति यदि व्यवहारकाल में अभ्यास नहीं करता है तो उपासनाकाल में उसको सफलता नहीं मिलती है।

प्र. 310. अभ्यास का लक्षण क्या है?

उ. योग के विषय में पढ़ने–पढ़ाने और सुनने–सुनाने के बाद यदि अभ्यास न किया जाय तो योग विद्या की प्राप्ति नहीं होती।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

इसलिए अभ्यास के स्वरूप को जानकर उसको व्यवहार में लाना चाहिए।

अभ्यास को सफल और चित्त की एकाग्रता सम्पादित करने के लिए स्वस्थ और बलवान शरीर की अपेक्षा रहती है। स्वस्थ और बलवान शरीर के लिए निम्न साधनों की आवश्यकता होती है –

(1) न्याययुक्त साधनों से उपार्जित सात्त्विक, पौष्टिक भोजन।
(2) शरीर के सामर्थ्यानुसार बुद्धिपूर्वक किया हुआ व्यायाम।
(3) ब्रह्मचर्य का पालन व समुचित निद्रा।

प्र. 311. अभ्यास करने की रीति क्या है?

इसका तात्पर्य है अभ्यास दीर्घ काल तक करना चाहिए, निरन्तर करना चाहिए और श्रद्धापूर्वक करना चहिए।

तप, ब्रह्मचर्य, विद्या–ये तीनों श्रद्धापूर्वक, विद्यापूर्वक अभ्यास के अंग हैं। ईश्वर का स्वरूप क्या है, उसकी प्राप्ति के साधन क्या हैं? उन साधनों का प्रयोग किस प्रकार से करना चाहिए? इस मार्ग में क्या–क्या बाधायें आ सकती हैं? इसमें कोई ऐसा आचरण तो नहीं है तो ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध हो। इन सब बातों को जानकर किया हुआ अभ्यास विद्यापूर्वक अभ्यास है। ऐसा अभ्यास सफल होता है।

बिना ज्ञान के जो अभ्यास किया जाता है उससे व्यक्ति अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचता है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 312. विवेक क्या है?

उ. जिसके द्वारा सत्यासत्य, जड़-चेतन, धर्माधर्म और शुभाशुभ का परिज्ञान होता है, उसका नाम "विवेक" है। इसको ऐसे भी कह सकते हैं कि जिसके द्वारा कार्य जगत, प्रकृति, जीवात्मा और ईश्वर का स्वरूप ठीक-ठीक जाना जाता है तथा इनसे उचित उपयोग लिया जाता है, वह विवेक है।

प्र. 313. विवेक की प्राप्ति के कुछ साधन बतायें?

यह साधन निम्न हैं :-

(1) वेद और वेदानुकूल ऋषिकृत ग्रन्थों का अर्थ सहित पढ़ना-पढ़ाना तथा तदनुकूल आचरण करना।

(2) सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी, योगाभ्यासी वैदिक विद्वानों का संग करना।

(3) यह शरीर क्या है? इन्द्रियाँ क्या हैं? यह सृष्टि क्या है? सृष्टि किसी ने बनाई है या स्वयं बन गई। ईश्वर, जीव, प्रकृति क्या है? यह जन्म क्या है? मरने के पश्चात् आत्मा शेष रहता है या शरीर के साथ नष्ट हो जाता है? यदि रहता है तो वह कहाँ रहता है? शरीर, इन्द्रियाँ, धन, सम्पत्ति आदि पदार्थों का स्वामी जीवात्मा है वा अन्य कोई ?इत्यादि विषयों का सूक्ष्मता से विचार करना।

(4) सांसारिक सुखों को क्षणिक एवं दु:खमिश्रित देखना।

प्र. 314. वैराग्य किसे कहते हैं?

उ. प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य को जानकर उनमें से असत्य को छोड़ देना और सत्य को ग्रहण कर लेना वैराग्य है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

वैराग्य की उत्पत्ति का साधन विवेक है। बिना विवेक के वैराग्य उत्पन्न नहीं होता। वैराग्य के द्वारा दोषों को छोड़ दिया जाता है।

प्र. 315. वैराग्य के स्वरूप के बारे में बतायें?

वर्तमान जीवन में इन्द्रियों के द्वारा अनेक सांसारिक विषय प्रत्यक्ष रूप में देखे और भोगे जाते हैं। ये दोषयुक्त हैं। इनको दृष्टि विषय कहते हैं। इन सुख-साधनों में निम्न दोष देखने से वैराग्य उत्पन्न होता है-

प्रथम दोष : भोगों के भोगने से विषय भोग की इच्छा न्यून नहीं होती अपितु पूर्व की अपेक्षा अधिक तीव्र हो जाती है। विषय सेवन से कोई लाभ नहीं होता है।

द्वितीय दोष : विषय सेवन से शरीर की शक्ति नष्ट हो जाती है जिससे शरीर के द्वारा सम्पन्न होने वाले कार्यों को व्यक्ति नहीं कर सकता।

तृतीय दोष : शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं जिससे व्यक्ति सदा दु:खी रहता है।

चतुर्थ दोष : सांसारिक सुख भोगने के लिए धन, सम्पत्ति आदि अनेक पदार्थों के उपार्जन में अति मूल्यवान समय लगाना पड़ता है और साधना के लिए पर्याप्त समय भी नहीं मिलता।

पंचम दोष : सुख के साधनों को सुरक्षित रखने के लिए महान परिश्रम करना पड़ता है।

षष्ठ दोष : जब सुख के लिए किये उपार्जित पदार्थ नष्ट हो जाते हैं तो अर्जनकर्ता को बहुत दु:ख होता है।

सप्तम दोष : भोगों के भोगने से व्यक्ति उनमें इतना आसक्त हो जाता है कि उनमें दोष दिखने पर भी वह उनको छोड़ना नहीं चाहता और यदि वह उनको छोड़ना चाहता है तो भी उनका छूटना अति कठिन हो जाता है।

अष्टम दोष : सांसारिक सुख प्राप्ति के लिए व्यक्ति अनेक प्राणियों की हिंसा करता है, जिस हिंसा का भयंकर दु:ख-फल ईश्वर की ओर से उसे मिलता है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

आनुश्रविक विषय : जिनका अभी प्रत्यख नहीं किया, उनको आनुश्रविक विषय कहते हैं। जैसे इच्छा करना कि अगले जन्म में उत्तम माता–पिता, साधन–सम्पन्न परिवार, धन, सम्पत्ति सम्मान मिले।

इन दोनों प्रकार के सुख और सुख साधनों में दोष देखने से वैराग्य उत्पन्न होता है।

नोट :- योगाभ्यास में साधक को स्वास्थ्यवर्धक पदार्थों को ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है। अस्वस्थ शरीर बनाना वैराग्य नहीं है। शरीर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन है। इसकी रक्षा करना, इसको दीर्घायु बनाना, स्वस्थ रहने के लिए अनुकूल पदार्थों का सेवन करना आवश्यक है। लेकिन सांसारिक पदार्थों का उचित प्रयोग होना चाहिए।

प्र. 316. वैराग्य कितने प्रकार का होता है?

उ. यह निम्न दो प्रकार का होता है–

(1) **वशीकार वैराग्य :** सब प्रकार के विषयों में तृष्णा रहित हो जाना, वशीकार वैराग्य है। भोगेच्छा रहित होने पर जो वशीकार वैराग्य सिद्ध होता है, भोगेच्छा के जागरित होने पर वह समाप्त हो सकता है।

(2) **पर वैराग्य :** सत्, रज, तम–प्रकृति के इन तीनों गुणों से तृष्णा रहित हो जाना पर वैराग्य है। गुणों से मुक्त होकर गुणातीत (सत, रज, तम से परे) होने पर जो पर वैराग्य होता है, वह कभी नष्ट नहीं होता है। विषयों का मूल ''गुण'' ही है। गुणातीत हो जाने पर ही योगी विषयों से नितान्त मुक्त होता है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 317. तृष्णा का अर्थ बताइये?

उ. पीने या भोगने की इच्छा का नाम तृष्णा है।

प्र. 318. जाग्रत अवस्था और भोग का क्या सम्बन्ध है?

उ. जाग्रति में मनुष्य वस्तुओं के भाव में वस्तुओं को भोगता है। इसमें स्थूल शरीर से वस्तुओं का भोग किया जाता है।

प्र. 319. निद्रावृत्ति (स्वप्न अवस्था) और भोग का क्या सम्बन्ध है?

उ. स्वप्न में मनुष्य वस्तुओं के अभाव में वस्तुओं को भोगता है। स्वप्न में केवल मन के द्वारा वस्तुओं का भोग किया जाता है। किन्तु इन्द्रियों पर उसका जाग्रति के समान ही प्रभाव पड़ता है और परिणाम होता है।

प्र. 320. स्वप्न कितने प्रकार के होते हैं?

उ. स्वप्न दो प्रकार के होते है। –

(1) **जाग्रत स्वप्न :** भोग प्राप्त न होते हुए भी या भोग की इच्छा न होते हुए भी जाग्रतावस्था में मन–ही–मन जो भोगों का चिंतन किया जाता है वह जाग्रत स्वप्न है।

(2) **सुप्त स्वप्न :** स्वप्नावस्था में मन के द्वारा जो भोगों का सेवन किया जाता है, वह सुप्त स्वप्न है।

राजयोग के पथिक के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि जाग्रति व स्वप्न दोनों अवस्थाओं में स्मृतियों का निरोध रहे।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 321. ''स्मृतिवृत्ति निरोध'' से क्या तात्पर्य है?

उ. सामान्यत: वासनाएं ही स्मृतियों का कारण हैं। मनुष्य में जब तक वासनाओं का निवास है तब तक भोगे हुए भोगों की, सेवन किए हुए विषयों की, अलगों-सलगों की स्मृतियाँ आती ही रहेंगी। स्मृति वृत्ति के पूर्ण शमन के लिए वासना रहित होना अनिवार्य है।

ब्रह्मचिंतन, आत्मचिंतन तथा तत्त्वचिंतन द्वारा आत्म-बोध को उद्‌बुद्ध करते रहने से वासनाओं का सुप्तीकरण होता है। वासनाओं के सुप्तीकरण से स्मृतियाँ सर्वथा प्रसुप्त रहती हैं। इसका नाम है स्मृतिवृत्ति का निरोध।

प्र. 322. ईश्वर प्रणिधान और ईश्वराधान में क्या अन्तर है?

उ. प्रात: सायं ईश्वर के नाम का जाप वा ईश्वर का भजन या ध्यान कर लेना और शेष समय में ईश्वर को भुलाये रखना-यह ईश्वराधान है।

सब कुछ करते धरते भी हर समय अनवरत अपनी भावना द्वारा आत्मना ईश्वर से भावित रहना, यह ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर प्रणिधान का आरम्भ भावना से होता है और अन्त ब्रह्मलीनता में, ब्रह्म-समाहिति में होता है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 323. चिन्ता और रोग का क्या सम्बन्ध है?

उ. चिन्ता और रोग का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। चिन्ता से रोग उत्पन्न होते हैं और रोग से चिन्तायें उत्पन्न होती हैं। चिन्ता और रोग के समन्वय का नाम व्याधि है।

चिन्तन करना मस्तिष्क का सहज, स्वाभाविक कार्य है। न केवल स्वस्थ और स्वच्छ मस्तिष्क, अपितु अस्वस्थ और विकृत मस्तिष्क भी सदैव चिन्तन करता रहता है।

चिन्तन की निम्न तीन धारायें हैं :-

(1) **इष्ट चिन्तन :** इष्टचिन्तन से आन्तरिक प्रफुल्लता प्रमुदित रहती है और परिणामस्वरूप समस्त आधियाँ-व्याधियाँ निराकृत रहती हैं और सम्पूर्ण जीवन-संस्थान पुष्पवत् सुविकसित अथवा विकासोन्मुख रहता है।

(2) **तत्त्वचिन्तन :** तत्त्व चिन्तन या उपाय चिन्तन से युक्त आत्मा ही तत्त्व चिन्तन करता है। तत्त्वचिन्तन से तत्त्व बोध होता है और साधना का मार्ग प्रशस्त होता है। साधना से सिद्धि होती है।

(3) **अनिष्ट चिन्तन अथवा चिंता :** अशुभ चिन्तन या चिंता से आन्तरिक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। व्याधियों से रोग फूट पड़ते हैं।

प्र. 324. एकतत्त्व अभ्यास से क्या तात्पर्य है?

उ. आप जिस समय जो काम करें, उस समय उसी से सम्बद्ध विचार तथा क्रिया करना एकतत्त्व अभ्यास है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

योगी को अपना ऐसा अभ्यास, स्वभाव अथवा संस्कार बना लेना चाहिए कि जब जिस काम को करना, अपना सारा ध्यान, अपनी सम्पूर्ण चेतना, अपना सम्पूर्ण चिन्तन और अपनी सम्पूर्ण चेष्टा को सम्पूर्णतय: उसी एक विषय में केन्द्रित कर देना चाहिए। अन्य किसी विषय का विचार भी उस समय तक न आने देना, जब तक कि लिया हुआ कार्य वा विषय समाप्त या सम्पूर्ण न हो जाये।

यह अभ्यास व्यवहारिक जीवन में भी उत्तम है।

प्र. 325. योगी का चित्त सदा निर्मल और सुप्रसन्न रखने के उपाय बतायें?

उ. योगी के लिए सारा संसार उसका अपना है। न केवल मनुष्य मात्र अपितु प्राणी-मात्र उसका आत्मीय है। योगी को चाहिए-

(1) **सुख में मैत्री की भावना करे** - सुखियों को देखकर मित्रता की भावना से वह सदा हर्षित होता रहे।

(2) **दुःख में करुणा की भावना करे** - दु:खियों को देखकर आत्मनिजता के साथ करुणा करता हुआ कामना करे कि वे सुखी हो जायें।

(3) **पुण्य में मुदिता की भावना करें** - पुण्यकर्मायों को देखकर योगी हर्षित होकर उनका साधुवाद करे।

(4) **अपुण्य में उपेक्षा की भावना करें** - पापकर्माओं के प्रति उपेक्षा (अविरोध) भाव से कामना करें कि वे पुण्यात्मा हो जायें।

विक्षेपरहित, निर्मल चित्त योगी की शुभ कामनायें नि:सन्देह दु:खियों को सुखी और पापियों को पुण्यात्मा बनाने की क्षमता रखती है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 326. चित्त को मलिन और खिन्न करने वाले तत्त्व बताओ?

उ. अविवेक और शोक चित्त को मलिन और खिन्न करते हैं। विषयों में राग से चित्त मलिन और खिन्न रहता है।

प्र. 327.ज्ञान और साक्षात्कार में क्या अन्तर है?

उ. किसी वस्तु या विषय का ज्ञान भोगी को भी हो सकता है। किन्तु प्रत्येक वस्तु वा विषय का साक्षात्कार केवल विज्ञानवान् योगी को ही होता है।

ज्ञान और प्रयोग का आधार मन, बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। वशीकार (संयम) तथा साक्षात्कार का आधार चित्त (आत्म चेतना, आत्मज्योत्स्ना) है। इन दोनों में परस्पर गूढ़ सम्बन्ध है। वशीकार से ही साक्षात्कार होता है।

प्र. 328. चित्त किन पदार्थों से बना है?

उ. चित्त सत्त्व, रजस, तमस नामक जड़ पदार्थों से मिलकर बना हुआ एक पदार्थ है, वस्तु है। इसमें सतोगुण की प्रधानता है। यह जीव का एक ऐसा आन्तरिक साधन है जैसे कि हस्तपादादि बाह्य साधन हैं। जिस प्रकार हस्तपादादि साधन जीव के अधीन हैं, उसी प्रकार चित्त भी उसके आधीन है।

सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण चित्त के उपादान कारण हैं। इसीलिए इसका स्वभाव तीन प्रकार का है-(1) प्रकाशशील, (2) गतिशील (3) स्थर्यशली।

चित्त में होने वाले वास्तविक व अवास्तविक ज्ञान को वृत्ति या व्यापार कहते हैं। चित्त परिवर्तनशील है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 329. चित्त की पाँच भूमियाँ (अवस्थायें) क्या हैं?

उ. (1) क्षिप्त अवस्था : जीवात्मा जिस अवस्था में चित्त को विविध विषयों में तीव्रता से चलाता है, उस अवस्था को क्षिप्त कहते हैं। इस अवस्था में रजोगुण की प्रधानता होती है और सत्त्व गुण तथा तमोगुण गौण रहते हैं। इस समय मनुष्य विविध ऐश्वर्यों का इच्छुक होता है। इस अवस्था में जो कार्य हानिकारक होते हैं, जीव उन कार्यों को भी कर बैठता है।

(2) विक्षिप्त अवस्था : इस अवस्था में सतोगुण प्रधान और तमोगुण गौण होता है। कभी-कभी रजोगुण प्रकट होता रहता है। व्यक्ति धर्म, ज्ञान, वैराग्य में अधिक रूचि लेता है। इस अवस्था में मनुष्य जब किसी विशेष विषय पर अपने चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न करता है तो चित्त में कुछ एकाग्रता आती है लेकिन यह स्थिति थोड़े समय के बाद, किसी बाधक कारण से भंग हो जाती है।

(3) मूढ़ अवस्था : इस अवस्था में तमोगुण प्रधान रहता है। सत्त्व और रजोगुण अप्रधान रहते हैं। इस स्थिति में मनुष्य को अधर्म, अज्ञान आदि अधिक प्रिय लगते हैं। धर्म आदि में जीवात्मा की रूचि, इस स्थिति में कम होती है।

(4) एकाग्र अवस्था : इसमें सत्त्वगुण प्रधान और रजस, तमस गौण रहते हैं। इसमें योगी विवेक, वैराग्य और अभ्यास के द्वारा चित्त को योग के लिए अपेक्षित किसी एक विषय में अधिकारपूर्वक बहुत काल पर्यन्त स्थिर कर लेता है।

इस अवस्था में सम्प्रज्ञात समाधि होती है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

योगाभ्यासी को पदार्थ का यथार्थ स्वरूप ज्ञान होता है। उसके क्लेश क्षीण होते हैं, उसके अशुभ एवं शुभ सकाम कर्मों की वासनाऐं शिथिल होती हैं।

(5) निरुद्ध अवस्था : इस अवस्था में चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है और असम्प्रज्ञात समाधि होती है। यह ईश्वर साक्षात्कार की स्थिति है।

नोट :- (1) क्षिप्त आदि पाँच अवस्थायें चित्त की हैं जीवात्मा की नहीं। अविद्या के कारण जीवात्मा इनको अपनी मान लेता है।

(2) पाँचों अवस्थाऐं - एक सीमा तक योगाभ्यासी के आधीन हैं–किसी को दूर करना या उत्पन्न करना जीवात्मा पर निर्भर करता है।

(3) सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण–इसमें से किसी को कम करना और अन्य को बढ़ाना जीवात्मा पर निर्भर करता है।

(4) जीवात्मा असावधानी, आलस्य, प्रमाद, गलत आहार–विहार आदि के कारण ऊँची अवस्था से नीची अवस्था प्राप्त कर सकता है लेकिन पुनः उच्च स्थिति भी ला सकता है।

प्र. 330. वृत्तियों के दो स्वरूप बताइये ?

उ. पाप और पुण्य की दृष्टि से वृत्तियों के दो स्वरूप–

(1) क्लिष्ट वृत्तियाँ :- जो वृत्तियाँ साधक को अज्ञान, अवैराग्य, अधर्म और बन्धन की ओर ले जाने में कारण बनती हैं, वे क्लिष्ट वृत्तियाँ हैं।

(2) अक्लिष्ट वृत्तियाँ :- जो वृत्तियाँ व्यक्ति को ज्ञान, वैराग्य, धर्म और मोक्ष की ओर ले जाने में कारण बनती हैं वे अक्लिष्ट वृत्तियाँ हैं।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 331. चित्त की एकाग्रता का क्या उपाय है?

उ. चित्त की एकाग्रता के लिए यम-नियम आदि आठ अंगों का अनुष्ठान आवश्यक है। योग अंगों के पालन से अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि विवेकख्याति पर्यन्त होती है। जैसे-जैसे अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि होती है, वैसे-वैसे चित्त की एकाग्रता दृढ़ होती जाती है।

योग में सफलता के लिए यम-नियम का जानना और उनका अपने जीवन में पालन करना अनिवार्य है। अविद्या, अधर्म आदि अशुद्धि को योग के आठ अंगों के अनुष्ठान से ही दूर किया जा सकता है। अन्य प्रकार से नहीं। मोक्ष की प्राप्ति भी इन्हीं अंगों के आचरण से हो सकती है।

नोट :-

(1) जो साधक प्रातः सायं लम्बे काल तक एक आसन में बैठकर कई घण्टे ध्यान का अभ्यास तो करता है परन्तु व्यवहार में मन, वचन, कर्म से यम-नियम के विरुद्ध आचरण करता है, ऐसे साधक को समाधि की प्राप्ति नहीं होती। यह मेरा व्यक्तिगत विचार है-''मदन अनेजा''

(2) मूर्ति पूजा करना - यम-नियम (ईश्वर प्रणिधान) का उल्लंघन है। अतः मूर्ति पूजक को कभी भी आन्तरिक शान्ति और ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है।

– मदन अनेजा

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 332. यम-नियमों के विरुद्ध आचरण के कुछ अन्य उदाहरण दीजिए?

उ.(1) मद्यमांसादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करना।
(2) खेती, व्यापार, सेवा कार्य में असत्य बोलना।
(3) चोरी करना, पदार्थों में मिलावट करना, कम तोलना।
(4) रिश्वत लेना, मिथ्या साक्षी देना।
(5) अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दूसरों की हानि करना।
(6) प्रीति को छोड़ झगड़ा करना या करवाना।
(7) ईश्वर-धर्म को छोड़ धन-सम्पत्ति को सर्वोपरि जानकर उसका उपार्जन करना।
(8) ब्रह्मचर्य के विरुद्ध आचरण करना।
(9) उत्तम वेदादि शास्त्रों को छोड़ अश्लील पुस्तकों को पढ़ना-पढ़ाना।
(10) सत्संग छोड़कर सिनेमा, दूरदर्शन के माध्यम से अश्लील शब्दों वा गानों का सुनना, नृत्यादि देखना।

उपरोक्त कारणों से भी ध्यान में सफलता नहीं मिलती है।

प्र. 333. योग के कौन-कौन से विघ्न (बाधायें) हैं?

उ. चित्त को विक्षिप्त (परेशान) करने वाले निम्न आठ विघ्न हैं।

(1) व्याधि : सभी प्रकार की व्याधियाँ चित्त को परेशान करती हैं। रोग को दूर करने में साधक और ईश्वर-दोनों कारण बनते हैं। शरीर किस प्रकार के खान-पान से स्वस्थ और अस्वस्थ होता है। इसका और शारीरिक विज्ञान का साधक को पता होना चाहिए।

शरीर को स्वस्थ बनाने में यम-नियम का पालन करना अनिवार्य है। इस बातों को आचरण में लाते हुए ईश्वरोपासना करने से रोग की निवृत्ति होती है।

ईश्वर भक्ति के अनेक लाभ हैं जैसे विषय–भोगों की इच्छा कम होना, ब्रह्मचर्य का पालन होना, खान–पान पर नियंत्रण होना, अविद्या का नाश होना, मानसिक रोग – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार का समाप्त होना आदि।

नोट :-

ईश्वर प्रणिधान/ईश्वर उपासना से अति–तीव्र रोग दूर नहीं हो सकता परन्तु उन रोगों को सहने की शक्ति ईश्वर की ओर से मिलती है जिससे योगी बड़े–बड़े दु:खों को भी सह लेता है।

(2) **स्त्यान (अकर्मण्यता)** : योगाभ्यास में अरुचि होना। ईश्वरोपासना करने से साधक की योगाभ्यास में रूचि बनी रहती है।

(3) **प्रमाद (लापरवाही)** : ईश्वर की उपासना से प्रमाद का नाश होता है।

(4) **आलस्य** : आलस्य का मुख्य कारण तमोगुण है। ईश्वरोपासना से तमोगुण दूर होता है और सत्त्वगुण की प्रधानता होती है।

(5) **अविरति (इन्द्रियों का विषय भोगों में राग)**: यह भी योग में बाधक है। ईश्वर से मिलने वाले सुख से (ईश्वरोपासना से) विषय भोग की इच्छा समाप्त हो जाती है।

(6) **भ्रान्ति दर्शन (मिथ्या ज्ञान)** : यह भी योग में बाधक है। ईश्वरप्रदत्त ज्ञान से मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति होती है।

(7) **अलब्धभूमिकत्त्व** : साधना करने पर भी समाधि की प्राप्ति न हो पाना, अलब्धभूमिकत्त्व है। ऐसी भावना योग में बाधक है। ईश्वर प्रणिधान से समाधि की प्राप्ति अवश्य होती है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(8) **अनवस्थितत्त्व :** समाधि प्राप्त होने पर पुनः उसका छूट जाना। समाधि की प्राप्ति होने पर उसको स्थिर करने में भी ईश्वर सहायता करता है।

प्र. 334. योग के कौन-कौन से उप विघ्न हैं?

उ. व्याधि आदि विघ्नों के होने पर निम्न उप-विघ्न भी होते हैं। उनके न होने पर नहीं होते हैं। ये भी योग में बाधक हैं।

प्रथम उपविघ्न : दु:ख : इससे पीडित हुआ प्राणी इसके नाश का प्रयत्न करता है। यह तीन प्रकार का है।

(1) **आध्यात्मिक दु:ख :** यह वह दु:ख है जो अपने कारण से होता है। इसमें स्वयं की त्रुटि से प्राप्त होने वाले दु:ख आते हैं।

(2) **आधिभौतिक दु:ख :** जो दूसरे प्राणियों के कारण से होते हैं। इसमें पशु-पक्षियों, मनुष्य आदि जीवों से प्राप्त होने वाले दु:ख आते हैं।

(3) **आधिदैविक दु:ख :** जो पृथ्वी आदि भूतों के कारण से होता है। इसमें बाढ़, भूकम्प, अकाल आदि प्राकृतिक विपदाओं से प्राप्त होने वाले दु:ख आते हैं।

द्वितीय उप विघ्न - अंगों में कम्पन :

यह कम्पन किसी रोग के कारण होती है। कभी-कभी व्यक्ति अपने अंगों को हिलाने का अभ्यासी भी हो जाता है। इससे भी चित्त की एकाग्रता भंग होती है।

तृतीय उप विघ्न : प्राणायाम करने में असमर्थता : जब व्यक्ति का श्वास- प्रश्वास पर अधिकार नहीं होता तो वह प्राणायाम नहीं कर पाता है। इससे भी चित्त की एकाग्रता नहीं हो पाती है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 335. योग के साधन क्या हैं अथवा क्रिया योग का स्वरूप क्या है?

उ. तप, स्वाध्याय और ईश्र प्रणिधान–ये तीन योग के साधन हैं। यह तीन साधन ही क्रिया योग कहलाते हैं।

(1) तप : सुख–दु:ख, शीतोष्ण, भूख–प्यास, हानि–लाभ, मान–अपमान आदि द्वन्द्वों को सहन करते रहना और अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहना तप कहलाता है। तप तीन विभागों में विभाजित है –

(क) शारीरिक तप : शरीर से शीतोष्णता आदि को सहते हुए, चोरी आदि अशुभ कर्मों को छोड़ कर सदा शुभ कर्मों को करना शारीरिक तप है।

विद्या पढ़ना–पढ़ाना, सुनना–सुनाना, मन और इन्द्रियों को वश में रखना, निष्काम कर्म करना, योगाभ्यास के लिए दीर्घकाल–पर्यन्त आसन पर बैठ कर वृत्तियों को रोकना और ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना प्रात: सायं करना भी तप है।

(ख) वाचनिक तप : वाणी से सत्य, मधुर, हितकारी बोलना वाचनिक तप है।

(ग) मानसिक तप : मन से राग, द्वेष, लोभ आदि का परित्याग करना, सब से प्रीति रखना मानसिक तप है।

(2) स्वाध्याय : जो ग्रन्थ ईश्वर, जीव, प्रकृति के यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान करवाते हैं, मोक्ष के रूप को, उसके साधनों को, बाध ाकों को और उसके फल को ठीक प्रकार से बतलाते हैं–वे मोक्षशास्त्र कहलाते हैं। इनका पढ़ना–पढ़ाना और प्रणवादि पवित्र मन्त्रों का जप करना स्वाध्याय है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(3) ईश्वर प्रणिधान : शरीर, इन्द्रियाँ, मन, धन–सम्पत्ति आदि समस्त पदार्थों को प्रभु का मानकर उसको समर्पण कर देना, उनका कोई लौकिक फल न चाहना, उसी की आज्ञानुसार उन सभी पदार्थों का प्रयोग करना, उसके समस्त पदार्थों को प्रिय समझना, अपना पिता, माता, आचार्य, उपास्य और राजा समझना, शब्द प्रमाण से उसके स्वरूप को अच्छे प्रकार से जानकर उसके मुख्य नाम ओ३म् का अर्थ सहित जप करना ईश्वर प्रणिधान है।

प्र. 336. क्रिया योग का क्या फल है?

उ. क्रिया योग के अनुष्ठान से –

(1) वृत्तिनिरोध की सिद्धि होती है।

(2) अविद्या आदि पाँच क्लेश निर्बल हो जाते हैं।

(3) समाधि की सिद्धि होती है।

प्र. 337. धर्माचरण से क्या तात्पर्य है?

उ. अष्टांगयोग के आचरण से अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि, विवेकख्याति पर्यन्त होती है। अष्टांगयोग का आचरण ही धर्माचरण है।

जब तक अविद्या बनी रहती है, तब तक अधर्माचरण भी बना रहता है और उसके रहते हुए जीवात्मा का जन्म–मरणादि भी चलता रहता है। **अविद्या आदि पाँच क्लेश समस्त अधर्मों और दुःखों के कारण हैं।**

जहाँ पर विद्या होगी, वहाँ धर्माचरण एवं ईश्वर उपासना अवश्य होगी, वहाँ पर सुख अवश्य होगा।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 338. क्लेश किसे कहते हैं? इनका क्या प्रभाव होता है?

उ. क्लेश का अर्थ है मिथ्या ज्ञान। ये दु:खों को उत्पन्न करते हैं। क्लेशों की प्रवृत्ति होने पर व्यक्ति धर्माचरण और ईश्वरोपासना को छोड़ देता है और अधर्माचरण एवं भोगों में फंस जाता है।

प्र. 339. क्लेश कितने प्रकार के हैं?

उ. क्लेश पाँच हैं–अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।

प्र. 340. अविद्या के बारे में बताइये?

उ. जिस साधन से पदार्थ का स्वरूप ठीक प्रकार से जाना जाता है, उसको विद्या कहते हैं और जिस साधन से पदार्थ का स्वरूप विपरीत रूप में जाना जाता है वह अविद्या कहलाती है।

जिस समय व्यक्ति किसी पदार्थ के स्वरूप को न वास्तविक रूप में जानता है और न विपरीत रूप में जानता है, यह विद्या का अभाव है–अविद्या नहीं है।

विद्या और अविद्या परस्पर एक दूसरे के विरोधी हैं। जहाँ पर विद्या होती है, वहाँ पर अविद्या नहीं रह सकती। योग–दर्शन में, मुक्ति में बाधक की दृष्टि से, अविद्या के चार प्रकार बताये हैं–

(1) **अनित्य पदार्थों को नित्य जानना :** मनुष्य का यह शरीर अनित्य है। अविद्या के कारण मनुष्य यह इच्छा रखता है कि यह शरीर अनन्त काल तक बना रहे।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

मन से शरीर को नाशवान मानने वाले विरले ही होते हैं। जैसे अनित्य शरीर को अविद्या के कारण व्यक्ति नित्य मानता है, वैसे ही वह पृथ्वी, सूर्य आदि अनित्य पदार्थों को भी नित्य मानता है। जो भी धन, सम्पत्ति, परिवार आदि मनुष्य के साथ सम्बद्ध हैं, उनको नित्य मानता है। यह अविद्या का एक भाग है।

(2) **अशुद्ध पदार्थों को शुद्ध मानना :** जैसे एक सुन्दर शरीर को देखकर व्यक्ति यह समझता है कि इस शरीर में कोई मल नहीं है, यह नितान्त शुद्ध है। इसी प्रकार से अन्यायपूर्वक धनोपार्जन को शुभ समझना और अशुद्ध खान–पान को शुद्ध समझना भी अविद्या है।

(3) **दुःख को सुख समझना :** संसार में जो सुख हैं, उसमें चार प्रकार का दुःख मिश्रित है–परिणाम दुःख, ताप दुःख, संस्कार दुःख और गुणवृत्तिविरोध दुःख। परन्तु अविद्या के कारण व्यक्ति उसको शुद्ध एवं दुःख रहित समझता है। उसकी प्राप्ति के लिए अनेक प्राणियों की हिंसा करता है।

(4) **जो पदार्थ आत्मा नहीं हैं, उनको आत्मा समझना :** शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि–ये सब पदार्थ आत्मा नहीं हैं। इनको व्यक्ति आत्मा समझता है। इनको आत्मा समझने के कारण इनके आधीन होकर अशुभ कर्मों को करता रहता है और मन आदि को दोषित मानता है।

नोट :–

व्यक्ति शास्त्रों को पढ़ने–पढ़ाने के पश्चात् यह मान लेता है कि मेरी अविद्या नष्ट हो गई है। परन्तु ऐसा मानना भूल है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

जब तक व्यक्ति प्रकृति, विकृति, आत्मा, परमात्मा के स्वरूप को अच्छे प्रकार से जानकर तदनुसार आचरण नहीं करता तब तक अविद्या का नाश और विद्या की प्राप्ति नहीं होती है।

प्र. 341. अस्मिता क्लेश के लक्षण बताइये?

उ. आत्मा और बुद्धि - दोनों भिन्न पदार्थ होने पर भी, अविद्या के कारण, दोनों एक प्रतीत होते हैं। यह अस्मिता क्लेश का स्वरूप है। जिस प्रकार बुद्धि को और स्वयं को आत्मा एक समझता है, वैसे ही, मन, इन्द्रियाँ और शरीर–इनको और आत्मा को भी एक समझता है। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, सुख, दुःख–ये प्रकृति के गुण हैं। परन्तु अज्ञानता के कारण जीवात्मा इनको अपने गुण मान लेता है। अपने स्वाभाविक गुण मान लेने पर इनको दूर करने का प्रयास नहीं करता।

बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, शरीर आदि जड़ पदार्थों का और आत्मा का वास्तविक रूप का ज्ञान हो जाने पर अस्मिता की निवृत्ति हो जाती है।

प्र. 342. ''राग'' नामक क्लेश का क्या स्वरूप है?

उ. सुख और सुख साधनों के अनुभव के पश्चात् पुनः सुख भोगने के लिए उनकी प्राप्ति की इच्छा राग है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

जब व्यक्ति सुख और सुख के साधनों का अनुभव करता है तब सुख और उसके साधनों के संस्कार चित्त में अंकित हो जाते हैं। कालान्तर में उन संस्कारों को उद्‌बुद्ध करने वाले साधनों के उपस्थित होने से वे उद्‌बुद्ध हो जाते हैं। उन संस्कारों से स्मृति उत्पन्न होती है। उस स्मृति से अनुभव किये सुख और सुख साधनों को प्राप्त करने की इच्छा हो जाती है। यह राग का स्वरूप है।

राग–द्वेष रूपी क्लेशों का परस्पर सम्बन्ध बना रहता है। सुख में बाधा आने पर बाधक के प्रति द्वेष उत्पन्न हो जाता है और बाधा दूर न होने पर निराशा मिलती है।

राग को दूर करने के उपाय हैं –

1) सुख और सुख के साधनों को क्षणिक जानना व मानना चाहिए। और

(2) ईश्वर में विद्यमान नित्यानन्द को जानना और उसकी प्राप्ति के लिए योगाभ्यास करना चाहिए।

प्र. 343. द्वेष का स्वरूप बताइये?

उ. जब व्यक्ति दुःख और उसके साधनों का अनुभव करता है, तब उस अनुभव से चित्त में संस्कार उत्पन्न होते हैं। उन संस्कारों से स्मृति उत्पन्न होती है। उस स्मृति से द्वेष की उत्पत्ति होती है। यह द्वेष का स्वरूप है। इस द्वेष के कारण व्यक्ति अन्यायपूर्वक कार्य करता है।

राग और द्वेष का परस्पर सम्बन्ध है। जब राग रूक जाता है तो द्वेष भी रूक जाता है। द्वेष को हटाने के उपाय भी राग को हटाने जैसे हैं।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 344. अभिनिवेश क्लेश क्या है?

उ. मृत्यु भय को अभिनिवेश कहते हैं। यह क्लेश साधारण मनुष्य से लेकर विद्वानों तक के जीवन में भी देखा जाता है।

जब अच्छे प्रकार से व्यक्ति यह जान लेता है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि हैं और इनका कभी विनाश भी नहीं होता, तब व्यक्ति मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है।

सांसारिक पदार्थों का अपना मानने से, उनके सुख को दु:ख रहित मानने से और उन पदार्थों को नित्य मानने से मृत्यु का भय होता है। परन्तु उन पदार्थों को ईश्वर का मानने से, उनके सुख को दु:ख मिश्रित तथा अनित्य मानने से और उन पदार्थों को भी अनित्य मानने से अभिनिवेश क्लेश की निवृत्ति होती है।

प्र. 345. पाँच क्लेशों की अवस्थाओं का वर्णन कीजिए?

उ. प्रत्येक क्लेश की निम्न पाँच अवस्थायें हैं।

(1) **प्रसुप्त :** क्लेशों का सुप्तावस्था में रहना प्रसुप्त अवस्था है। हर मनुष्य में आन्तरिक रूप से प्रसुप्त वासनायें हैं। ये वासनायें पूर्व जन्म की भी होती हैं और इन जन्म की भी होती हैं। ये जब चाहें जाग सकती हैं। जैसे विविध प्रकार के बीज भूमि में विद्यमान रहते हैं परन्तु जब उनके अनुकूल जल, वायु आदि होते हैं तब वे अंकुरित हो जाते हैं। इसी प्रकार से व्यक्ति के मन में जन्म–जन्मान्तर की वासनायें विद्यमान रहती हैं। जब वासनाओं के अनुकूल उनके उद्‌बोधक कारण उपस्थित होते हैं।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

तब वे उद्‌बुद्ध हो जाती हैं। उदाहरण: बाल्यकाल में काम आदि की वासनाऐं विद्यमान रहती हैं लेकिन शारीरिक सामर्थ्य आदि कारण नहीं होते। अत: वे प्रसुप्त रहती हैं।

(2) **तनु:** जब क्लेश सूक्ष्म रूप में रहते हैं, तब तनु कहलाते हैं। क्रियायोग के द्वारा क्लेश निर्बल हो जाते हैं। वे साधक के मन में विषय भोगों की ओर विशेष उत्तेजना उत्पन्न नहीं करते। इस स्थिति को तनु कहते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर ये जाग जाते हैं। प्रसुप्त क्लेश सोया हुआ होता है जबकि तनु क्लेश कुछ जगा हुआ होता है।

(3) **विच्छिन्न :** जब ये प्रबल रूप में रहते हैं परन्तु इनके विरोधी क्लेश की तीव्रावस्था के कारण कुछ समय के लिए दब जाते हैं तब वे विच्छिन्न कहे जाते हैं। जब किसी एक विषय में राग की प्रवृत्ति होती है तो उससे भिन्न विषय का राग रूक जाता है। उस प्रवृत्त राग के शान्त होने पर यह रूका हुआ राग सक्रिय हो जाता है। इसी प्रकार से एक विषय में द्वेष उभरता है तो अन्य विषय का द्वेष रूक जाता है।

(4) **उदार :** जब क्लेश तीव्र रूप से प्रवृत्त होता है तो उसको उदार कहा जाता है।

जब व्यक्ति के मन में अत्यन्त तीव्र क्रोध उभरता है तो वह कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को नहीं जान सकता। यह क्लेश की उदार अवस्था है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

इसी प्रकार से अस्मिता, राग, अभिनिवेश क्लेशों के विषय में भी जान लेना चाहिए।

(5) **दग्धबीजभाव :** इस अवस्था में क्लेश अपनी अनुकूल विषय के समक्ष होने पर भी क्रियाशील नहीं होते हैं। जैसे एक गेहूँ के बीज को अग्नि में भून देने के पश्चात् वह अनुकूल वातावरण प्राप्त करके भी अंकुरित नहीं होता। इसी प्रकार योगाभ्यासी योगाभ्यास के द्वारा अविद्या आदि क्लेशों को शक्तिहीन बना देता है। यह योग्यता योगी में होती है, सांसारिक जनों में नहीं।

प्र. 346. पाँच क्लेशों से छूटने के उपाय बताइये?

उ. इसके निम्न चार उपाय हैं –

(1) साधक ईश्वर, जीव और प्रकृति–विकृति के वास्तविक स्वरूप को जाने।

(2) निष्काम कर्म को व्यवहार में लावे।

(3) अष्टांगयोग का अनुष्ठान करें।

(4) योगाभ्यासी वेदवेत्ता सत्पुरुषों का संग करें।

प्र. 347. क्या भक्तिमार्ग में विद्या की कोई आवश्यकता है?

उ. वेद और वेदानुकूल ऋषिकृत ग्रन्थों में विद्या को मुक्ति का अनिवार्य साधन माना है। इसलिए बिना विद्या के मोक्ष प्राप्त होना असंभव है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 348. शुभ और अशुभ कर्मों के बारे में बतायें?

उ. **शुभ कर्म :** जो कर्म ईश्वर की आज्ञानुसार हैं, वे शुभ कर्म हैं अर्थात् जिन कर्मों से स्वयं को व अन्यों को सुख मिले, वे शुभ कर्म हैं।

अशुभ कर्म : जो कर्म ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध हैं, वे अशुभ कर्म हैं। अर्थात् जिनके करने से स्वयं को वा अन्यों को दुःख मिले, वे अशुभ कर्म हैं।

प्र. 349. कर्मों का फल कौन देता है?

उ. कर्म स्वयं अपना फल नहीं दे सकते क्योंकि वे चेतन पदार्थ नहीं हैं। कर्मों का फल ईश्वर देता है, राजा देता है, अन्य मनुष्य भी देते हैं।

प्र. 350. फल के आधार पर कर्म कितने प्रकार के हैं?

उ. फल के आधार पर कर्म दो प्रकार के हैं –

(1) **दृष्टजन्मवेदनीय :** जिन कर्मों का फल इसी जन्म में मिल जाता है, वे इस श्रेणी में आते हैं।

(2) **अदृष्टजन्मवेदनीय :** जिन कर्मों का फल आगामी जन्मों में मिलता है वे इस श्रेणी में आते हैं।

जब कर्मों का एक बड़ा भाग मनुष्य या पशु आदि योनि देने में समर्थ होता है तब उस कर्म समूह के आधार पर ईश्वर उस जीवात्मा को मनुष्य, पशु आदि योनियों में भेज देता है।

प्र. 351. दुःख की क्या परिभाषा है?

उ. बाधा, पीड़ा, अशान्ति, बन्धन, पराधीनता का नाम 'दुःख' है अथवा जिससे पीड़ित होकर प्राणी उसका नाश करने का प्रयत्न करता है, वह दुःख है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

दु:ख एक वस्तु है। अभाव का नाम दु:ख नहीं है। यदि अभाव का नाम दु:ख होता तो उससे त्याग का विधान करना व्यर्थ हो जाता। इसलिए दु:ख एक गुण है और वह प्राकृतिक पदार्थों में रहता है। जब प्राकृतिक पदार्थों से जीवात्मा का सम्बन्ध होता है, तब दु:ख की प्राप्ति होती है।

प्र. 352. चार प्रकार के दु:ख का वर्णन करें?

उ. संसार में चार प्रकार के दु:ख निम्न हैं :-

(1) **परिणाम दु:ख :** जब कोई व्यक्ति किसी सुख को भोगना चाहता है और सोचता है कि "इस सुख को भोग कर मेरी इच्छा शान्त हो जायेगी, परन्तु सुख भोगने के बाद भी उसकी वह इच्छा शान्त नहीं होती और मन में अशान्ति, दु:ख बना ही रहता है। इसलिए इसका नाम परिणाम दु:ख है।

उदाहरण: एक व्यक्ति की रसगुल्ले खाने की इच्छा है। 5-7 रसगुल्ले खाने के बाद उसे सुख का अनुभव होता है लेकिन उसके मन में इच्छा की शान्ति नहीं होती। लेकिन और रसगुल्ले अब खा नहीं सकता। परन्तु मन में इच्छा तो बनी हुई है। वह व्यक्ति अब अतृप्ति का, दु:ख का अनुभव करता है। इसी का नाम परिणाम दु:ख है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(2) ताप दु:ख : जब व्यक्ति को सुख छिनने का भय हो तो वह ताप दु:ख कहलाता है।

उदाहरण : मान लो किसी व्यक्ति ने दोपहर को 10 रसगुल्ले मंगवाये और निश्चय किया कि उनको रात को खाऊँगा। अब रात तक उसको भय का अनुभव होता रहेगा कि कोई और व्यक्ति उनको खा न ले। यही ताप दु:ख है।

(3) संस्कार दु:ख : जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु का सुख एक बार या बार-बार लेता है तो उसके मन पर (चित्त पर) इसके संस्कार बार-बार पड़ते रहते हैं। जब वह वस्तु उसको नहीं मिलती तब उसे दु:ख होता है। यह दु:ख संस्कारों के कारण होता है जो सुख लेने पर बने थे। इसे संस्कार दु:ख कहते हैं।

(4) गुणवृत्तिविरोध दु:ख : सत्त्व, रज, तम - यह तीन प्रकार के सूक्ष्मतम परमाणु हैं जिनका प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ता है। इन तीनों गुणों के स्वभाव में परस्पर टकराव है। टकराव के कारण व्यक्ति निर्णय नहीं ले पाता है कि क्या करूँ या क्या न करूँ। इसे ही गुणवृत्तिनिरोध दु:ख कहते हैं।

नोट :- (1) रसगुल्ले की तरह सभी वस्तुओं में-धन, सम्पत्ति, सोना, चांदी, भोजन, कपड़े, कार आदि में यह चार दु:ख भरे पड़े हैं। (2) यदि सुखों का भोग जीवन रक्षा की मानसिकता से करें तो प्रथम तीन दु:खों से बचा जा सकता है। फिर संस्कार आदि नहीं बनते हैं। (3) गुण-वृत्तिविरोध दु:ख केवल मोक्ष प्राप्त होने पर ही समाप्त होता है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 353. दु:ख के कारण बताइये?

उ. दु:ख के अनेक कारण हैं। मुख्य कारण निम्न हैं :-

अविद्या, अन्याय, अशुभ उपासना, कुसंस्कार, आलस्य आदि।

प्र. 354. अनागत दु:ख (भावी दु:ख) से कैसे छूटा जा सकता है?

उ. जो व्यक्ति अनागत दु:ख को और दु:ख के कारण को जान लेता है, उससे छूटने का उपाय करता है, वही दु:ख से छूट सकता है।

दु:ख, दु:ख का कारण, सुख, सुख का कारण-इन चार विषयों के परिज्ञान से और उसके लिए आवश्यक कर्त्तव्य से अनागत दु:ख दूर किया जा सकता है।

प्र. 355. बुद्धि और आत्मा का क्या सम्बन्ध है?

उ. बुद्धि सत्त्वादि तीन गुणों से बनी है। इसलिए वह जड़ है। जीवात्मा दृष्टा है अर्थात् जानने वाला है और वह बुद्धि की वृत्तियों के अनुसार देखता है। जीवात्मा चेतन पदार्थ है जड़ नहीं। आत्मा में ज्ञान गुण स्वभाविक है और बल, इच्छादि भी उसके स्वाभाविक गुण हैं।

बुद्धि के समक्ष जो पदार्थ उपस्थित होते हैं, उनका वह चित्र उतारती है और जो पदार्थ उसके समक्ष नहीं होते, उनका चित्र नहीं उतारती। जिनका चित्र उतरता है वे ज्ञात हैं और जिनका चित्र नहीं उतरता, वे अज्ञात हैं। अर्थात् चित्र वाले पदार्थों को जीवात्मा जानता है अन्यों को नहीं।

बुद्धि में पदार्थों का जो भी आकार-प्रकार उतरता है उसको जीवात्मा सदा जानता है। कभी भी ऐसा नहीं होता कि बुद्धि में कोई चित्र उतरे और उसको जीवात्मा न जाने।

बुद्धि परिवर्तनशील है–आत्मा नहीं। बुद्धि आत्मा के लिए कार्य करती है।

बुद्धि सत्त्वादि तीन गुणों से बनी है, जड़ है। जीवात्मा तीन गुणों का भोक्ता है। चेतन है। यह दोनों की असमानरूपता है। बुद्धि और आत्मा की समानरूपता यह है कि बुद्धि में जो विविध पदार्थों के आकार प्रकार उभरते हैं, उनको उसी रूप में देखता हुआ, आत्मा, अज्ञानता के कारण, उनको और स्वयं को एक समझता है। उदाहरण – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि प्राकृतिक पदार्थों के गुण हैं; परन्तु जीवात्मा, अपनी अज्ञानता के कारण, इनको अपने से भिन्न नहीं समझता।

जब आत्मा बुद्धिवृत्तियों को स्वयं से पृथक नहीं जानता तब अस्मिता क्लेश की उत्पत्ति होती है। जब व्यक्ति अपने स्वरूप को ठीक प्रकार से जान लेता है तो यह भ्रान्ति दूर हो जाती है और व्यक्ति मन, बुद्धि, इन्द्रियों के आधीन नहीं होता।

प्र. 356. आसन के कितने भेद हैं?

उ० आसन के दो भेद हैं :–

(1) जिन आसनों का प्रयोग शरीर को स्वस्थ और बलवान बनाने के लिए किया जाता है वे व्यायाम सम्बन्धी आसन हैं।

(2) जिन आसनों का प्रयोग धारणा, ध्यान, समाधि के लिए किया जाता है वे योगासन हैं जैसे स्वस्तिकासन, पद्मासन आदि। सभी आसनों का नाम योगासन नहीं हैं।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 357. योगासन के बारे में बतायें?

उ. जिस आसन में बैठकर सुखपूर्वक ईश्वर का ध्यान किया जा सके, उसी में बैठकर करना चाहिए। आसन में नीचे सूती वस्त्र आदि रखना चाहिए जिससे भूमि या तख्त आदि की पीड़ा न हो।

यदि एक आसन पर दीर्घकालीन पर्यन्त न बैठा जाये तो आसन को परिवर्तित कर लेना चाहिए। आसन में बैठने की समय सीमा शारीरिक क्षमता पर निर्भर होती है। यह 30 मिनट, 1 घंटा और अधिक भी हो सकती है।

प्र. 358. आसन सिद्धि का उपाय बतायें?

उ. आसन सिद्धि के निम्न उपाय हैं :-

(1) आसन सिद्धि का अर्थ 2-3 घंटे आसन में बैठना नहीं है। यह 15 मिनट 30 मिनट, 1 घंटा और अधिक भी हो सकता है।

(2) आसन में बैठकर श्वास-प्रश्वास को प्राणायाम द्वारा नियंत्रित करते हैं। इससे आसन स्थिर होता है।

(3) आसन में बैठने का अभ्यास प्रति-दिन प्रातः सायं नियम से करना चाहिए। आहार पर नियंत्रण रखना चाहिए।

(4) ईश्वर को अनन्त व निराकार मानकर उसका ध्यान करने से आसन सिद्धि में सहायता मिलती है।

(5) ईश्वर का ध्यान करते समय शरीर की सभी चेष्टाओं/क्रियाओं को रोक देना चाहिए।

(6) ईश्वर कभी भी हिलता-जुलता नहीं है। इसलिए उसका ध्यान करने से, व्यक्ति का शरीर भी हिलना-जुलना बन्द कर देता है। यह आसन सिद्धि की अवस्था है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

प्र. 359. समाधि के बारे में बतायें?

उ. समाधि नाम जीवन की उस अवस्था का है जिसमें आत्मा – मन, बुद्धि और इन्द्रियों से अप्रभावित रहता हुआ ब्रह्मप्रेरित रहता है। अभ्यास और वैराग्य से चित्त की वृत्तियों का निरोध सिद्ध हो जाने पर योगी को सतत् (सदैव) समाधि की सिद्धि होती है।

प्र. 360. समाधि कितने प्रकार की होती है?

उ. समाधि दो प्रकार की होती है–

(1) **सम्प्रज्ञात समाधि :**

समाधि सिद्ध योगी को जब बाह्य जगत में कार्य करना होता है, तब वह बुद्धि और मन को बाहर की ओर प्रेरित करके इन्द्रियों सहित आत्म–प्रज्ञापूर्वक बाह्य जगत में कार्य करता है। जाग्रतावस्था तथा स्वप्नावस्था – दोनों बाह्यमुखता की कोटि में आते हैं। बाह्यमुखता में योगी आत्मना ब्रह्म से प्रेरित होकर कर्म करता है। ब्रह्म की इच्छा ही उसकी इच्छा बन जाती है और ब्रह्म की इच्छा पूर्ति के लिए ही वह प्रत्येक कार्य करता है। ब्रह्म की इच्छा क्या है, यह उसके निर्मल अन्तःकरण में सम्प्रज्ञात (सम्यक् प्रज्ञात) होता रहता है। इसी अवस्था का नाम सम्प्रज्ञात समाधि है।

नोट :– प्रत्याहार, धारणा, ध्यान के लिए पुस्तक वैदिक विचार संग्रह भाग–3 देख लें।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार – स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

(2) असम्प्रज्ञात समाधि :

समाधि सिद्ध योगी को जब अन्तर्जगत् में ब्रह्म से एकाकार होना होता है तब वह आसनस्थ होकर, बुद्धि, मन और इन्द्रियों को पूर्णतया निश्चेष्ट करके आत्मना ब्रह्म का सन्दर्शन करता हुआ तल्लीन रहता है। इस अवस्था का नाम असम्प्रज्ञात समाधि है।

असम्प्रज्ञात समाधि में आत्मा को सिवाय अपने आत्मा और परमात्मा के अन्य कुछ भी प्रतीत नहीं होता है। अन्तर्मुख होकर अन्त:विराम (अन्तः समाधि) का अभ्यास करते-करते योगी संस्कार-शेष हो जाता है। संस्कार-शेष योगी की उस अवस्था का नाम है जिसमें योगी मायाजन्य बाह्य संस्कारों से सर्वथा प्रभाव रहित रहता है।

संस्कार-शेष होने पर योगी जब भी आसनस्थ होकर ध्यान लगाता है, तब ही उसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि सुषुप्त हो जाती हैं। और उसका आत्मा पूर्ण विराम की अवस्था में नितान्त आत्म-अवस्थित होकर ब्रह्मलीनता की स्थिति में स्थित रहता है। वह जितनी देर तक का संकल्प करके आसनस्थ होता है, उतने समय तक इस अवस्था में स्थित रहता है और तत्पश्चात् सम्प्रज्ञात स्थिति में लौट आता है।

साभार : पु. योगदर्शनम्, व्याख्याकार - स्वामी सत्यपति परिव्राजक एवं योगालोक, ले. स्वामी विद्यानन्द बिदेह

वेद और योगदर्शन के अनुसार जो मनुष्य ईश्वर को निराकार नहीं मानता, सर्वज्ञ नहीं मानता, सर्व व्यापक नहीं मानता, वेदों के अनुसार उसकी उपासना नहीं करता, उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करता है, ऐसे व्यक्ति को न तो ध्यान व उपासना में सफलता मिलती है और न ही ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति।

अतः ध्यान व उपासना में सफलता के लिए शुद्ध वैदिक ज्ञान का होना, ईश्वर की आज्ञाओं का पालन और निराकार ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करना अनिवार्य है। निराकार ईश्वर की प्रार्थना, उपासना, ध्यान करना कठिन नहीं है। यह एक भ्रम है।

आइये! इस भ्रम से बाहर निकलें। वेदों की आज्ञा के अनुसार निराकार ईश्वर, सर्वशक्तिमान, सर्व व्यापक व सृष्टिकर्ता की प्रार्थना, उपासना आज से करना शुरू करें। निराकार ईश्वर की प्रार्थना, उपासना व ध्यान करने की सरल विधियों के लिये पढ़ें –मदन अनेजा द्वारा सरल हिन्दी में लिखित निम्न आध्यात्मिक पुस्तकें :–

1. **योग चिन्तन, जप एवं ध्यान :–** ध्यान क्या है? इसका उद्देश्य क्या है? ध्यान किसका करें? ध्यान से लाभ। वेदानुकूल पद्धति क्या है? ध्यान विधि, ईश्वर प्रकृति, जीवात्मा का शुद्ध ज्ञान, अष्टांग योग आदि विषयों का इस पुस्तक में वर्णन है।

2. **वैदिक सन्ध्या व यज्ञ विधि :–** सन्ध्योपासना एवं यज्ञ में प्राणायाम प्रयोग करने का महत्त्व, वैदिक यज्ञ–हवन विधि, गायत्री मन्त्र द्वारा हवन विधि, ओ३म्/गायत्री मंत्र जप विधि आदि विषयों का बोध कराती है।

3. **प्रार्थना उपासना विधि :–** प्रार्थना–उपासना का अर्थ, प्रार्थना की चार प्रभावित विधियाँ, मंत्र उच्चारण में प्राणायाम का प्रयोग आदि प्रसंग का वर्णन है।

4. **जीवन निर्माण व उपासना में ब्रह्मचर्य का महत्त्व :–** ब्रह्मचर्य, वीर्य रक्षा एवं वीर्य नाश सम्बन्धित ज्ञान अत्यन्त सरल हिन्दी भाषा में दिया गया है ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपना और अपने बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा कर सके।

5–7 – वैदिक विचार संग्रह भाग 1, 2 और 3 :– वेदाध्ययन से व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक उन्नति होती है, अन्धकार का नाश होता है। वैदिक ज्ञान व वैदिक धर्म से परिचय, ग्रहस्थ जीवन से सम्बन्धित सभी विषयों पर 600 वैदिक विचार, ओ३म् जप, गायत्री जप, ध्यान व सरल वैदिक मन्त्रों द्वारा ईश्वर भक्ति/उपासना आदि सरल भाषा में प्रस्तुत हैं।

8. **वैदिक प्रार्थनाएँ एवं धार्मिक कर्म :–** सभी मांगलिक सुअवसरों पर प्रयोग होने वाले वैदिक मंत्र और वैदिक प्रार्थनाओं का वर्णन है। मंत्र उच्चारण में सहायता और उनका सरल भावार्थ हिन्दी और अंग्रेजी में दिया गया है। आप इस पुस्तक की सहायता से सभी धार्मिक कर्म–यज्ञ आदि स्वयं घर पर कर सकते हैं।

9. **आध्यात्मिक ज्ञान–सरल परिचय :** इसमें वेद, उपनिषद, दर्शन आदि ग्रन्थों के आधार पर ईश्वर, जीव, प्रकृति, सृष्टि, धर्म, योग, ध्यान, उपासना आदि विषयों की जानकारी सरल हिन्दी भाषा में, प्रश्न–उत्तर के रूप में, दी गई है जिससे साधकों की अधिकतर भ्रान्तियाँ समाप्त हो सकें।

उपरोक्त सभी पुस्तकें निम्नलिखित लिंक पर निःशुल्क उपलब्ध हैं। पढ़कर लाभ लें। – https://drive.google.com/drive/folders/1HkVcnkoqoUY-2DWxn_d-Y3xTEiCibzxol?usp=sharing

मदन अनेजा–मो0 – 9873029000 (Whatsapp only please)

लेखक परिचय

श्री मदन लाल अनेजा का जन्म 10 मार्च 1952 को जिला रामपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ। सुप्रीम कोर्ट ऑफ इण्डिया में 22 वर्ष सेवा करने के बाद संयुक्त रजिस्ट्रार के पद से वी0आर0एस0 के अंतर्गत सेवानिवृत्त हुये। 1999 में पुनः राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में संयुक्त रजिस्ट्रार (विधि) के पद पर 12 वर्ष 6 मास एवं सलाहकार (विधि) के पद पर 2 वर्ष 6 मास तक आयोग की सेवा की।

प्रभु के आशीर्वाद व प्रेरणा से योग व ध्यान में आपकी विशेष रुचि है।

आपके द्वारा लिखित सभी पुस्तकें (1) योग चिन्तन-जप एवं ध्यान, (2) वैदिक सन्ध्या व यज्ञ विधि, (3) जीवन-निर्माण एवं उपासना में ब्रह्मचर्य का महत्त्व,(4) प्रार्थना उपासना विधि एवं (5-7) वैदिक विचार संग्रह भाग-1, भाग-2, भाग-3, (8)वैदिक प्रार्थनाएँ एवं धार्मिक कर्म और (9) आध्यात्मिक ज्ञान (सरल परिचय) पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय हो रही हैं। आपकी पुस्तकों में समाज में फैली अनेक भ्रान्तियों और ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना व ध्यान विधि पर सरल भाषा में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उपरोक्त पुस्तकों को www.manavsanskar.com से निःशुल्क डाउनलोड करके दूर-दूर तक भारत व विदेशों में साधक इनका स्वाध्याय कर रहे हैं और अपने जीवन को वेदानुसार चलाने में अग्रसर हो रहे हैं।

आशा है सभी साधकों को वैदिक संस्कृति, वेद ज्ञान और ईश्वर स्तुति-प्रार्थना, उपासना व ध्यान व प्राण-साधना की विधियों का लाभ इन पुस्तकों में दिये गये वैदिक विचारों के माध्यम से और अधिक प्राप्त हो सकेगा, ताकि आप जीवन की हर कठिन राह में सफलता के अधिकारी बन सकें।

सी-79, तक्षशिला अपार्टमेन्ट,
प्लाट नं0-57, आई.पी. एक्सटेंशन,
दिल्ली-110092

विक्रान्त अनेजा (मंत्री)
मानव संस्कार फाउन्डेशन